सुनो कहानी

प्रकाशक
धर्मोदय परीक्षा बोर्ड
सागर (म.प्र.)

कृति	:	सुनो कहानी
संस्करण	:	चतुर्थ, जनवरी 2013
आवृत्ति	:	1100
मूल्य	:	25/-
प्राप्ति स्थान	:	धर्मोदय परीक्षा बोर्ड जैन मंदिर के पास बाहुबली कॉलोनी, सागर (म.प्र.) 094249-51771
मुद्रक	:	विकास आफसेट, भोपाल

दो शब्द

इस पुस्तक में बच्चों को सुनाने के लिए शिक्षाप्रद 129 कहानियों का संकलन आपके समक्ष प्रस्तुत है। इन कहानियों को देने का उद्देश्य है कि कहानी से बालमन प्रभावित होकर शिक्षा ग्रहण कर ले, तद्रूप आचरण कर जीवन को अच्छा बनाने के लिए तैयार हो जाये। शिक्षकों से निवेदन है कि इन कहानियों को रोचक बनाकर सुनाने का प्रयास करें।

इस संकलन में जिन रचनाकारों की कहानियों का समावेश किया गया है। उन सबके प्रति मैं अपने हृदय के गहनातिगहन तल से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

प्रकाशक

कहानी कैसे सुनायें

प्रस्तुत कृति में बच्चों को सुनाने के लिए शिक्षाप्रद 129 लघु कहानियाँ दी गई हैं। यहाँ कहानियों का मूल विषय दिया गया है। इसका उद्देश्य है – कहानी सुनाते समय कहानी सुनने वाला कहानी की ओर आकर्षित एवं प्रभावित होकर कुछ शिक्षा ग्रहण कर सके। कहानी सुनते समय मन कहानी में आने वाले आगे के प्रकरण को जानने के लिए लालायित रहे और कहानी में जो विषय चल रहा है उसको सुनने में तल्लीन रहे, यह सब कहानी सुनाने वाले के द्वारा की गई प्रस्तुति पर निर्भर है। और फिर बच्चों को सुनाना हो तो और भी सुन्दर प्रस्तुति का होना बहुत आवश्यक है। इसलिए आप इन कहानियों को रोचक बनाकर सुनाने का प्रयास करें।

रोचक बनाने के लिए – जैसे किसी सेठ की कहानी सुनानी है तो वह सेठ कैसा था, उसकी वेश–भूषा कैसी थी, जैसे– जिसके तोंद होती है, मलमल का कुर्ता पहनता है, जिसके गले में सोने की चैन और अंगुलियों में सोने की हीरे लगी अंगूठी होती है, जो सिर पर पगड़ी बाँधता है, जिसके कपड़ों पर सोने के बटन लगे रहते हैं, जिसका व्यक्तित्व मन्द मुस्कान के साथ–साथ आकर्षक होता है।

यदि धर्मात्मा–सज्जन सेठ की कहानी हो तो वह भगवान् की पूजा करता था, गरीबों को भोजन कपड़े आदि का दान देता था, आदि धार्मिक गुणों का थोड़ा–सा वर्णन करके आगे की कहानी कहें।

यदि गरीब निर्लोभ व्यक्ति की कहानी है तो वह गरीब होकर भी कभी झूठ नहीं बोलता था, भूखा रह जाता था लेकिन माँग कर या बिना पूछे किसी की वस्तु उठाकर नहीं खाता था, साबुन आदि नहीं मिलने पर भी रोज स्नान करता था, साफ-सफाई से रहता था आदि।

छली, मानी आदि की कहानी है तो उनके दुष्फलों का थोड़ा वर्णन करें। आपको कहानी के अलावा कोई साक्षात् अड़ोस-पड़ोस आदि में देखा हुआ उदाहरण याद हो तो बतावें।

उपर्युक्त बातों का ध्यान रखते हुए जिस प्रकार नमक-मिर्च आदि मसाला डाल देने पर सब्जी रुचिकर बन जाती है, कहानी के भावार्थ को ध्यान में रखते हुए और विशेषताएँ बताते हुए उसे रोचक बना कर प्रस्तुत करें।

इससे बहुत छोटी कहानी भी थोड़ी बड़ी हो जायेगी और सुनने में अच्छी लगेगी। बहुत लम्बी भी न करें, प्रकरण से बाहर भी नहीं जावें ताकि बच्चे का मन कहानी सुनने में अच्छी तरह लगा रहे। कहानी सुनाते समय बच्चे को बीच-बीच में सेठ क्या कर रहा था, कौन क्या कह रहा था आदि पूछते रहें ताकि बच्चा कहानी को सुनने में एकाग्र रहे।

●●●

अनुक्रम

1.	शास्त्र दान का फल	11
2.	माँ की सेवा का फल	11
3.	कपटी पीटा जाता है	12
4.	प्रशंसा में नहीं बहना	13
5.	बैल की कथा	13
6.	णमोकार मंत्र का प्रभाव	14
7.	मन्त्र का प्रभाव	15
8.	बड़ों की नहीं मानने से हानि	15
9.	जीवहिंसा का पाप	16
10.	मीठा बोलो, सभी प्यार करेंगे	17
11.	सेवा और श्रम की महिमा	18
12.	गुरुभक्ति	19
13.	माँस खाने से नरक दुःख	20
14.	शान्ति स्थापना ही सच्चा लाभ	20
15.	मन्त्र मनन से उद्धार	21
16.	प्रिय वचन	22
17.	स्वार्थी भूखे रहे	23
18.	वेश्या सेवन	24
19.	शिकार करना	25
20.	चोरी करना	26

21.	परस्त्री सेवन	27
22.	गुस्से की अचूक दवा	28
23.	जल्दबाजी नहीं करना	29
24.	अभयदान का फल	30
25.	गंधमित्र की कथा	30
26.	जुआ व्यसन से दुर्दशा	31
27.	महासती अत्तिमब्बे	32
28.	महारानी शान्तलादेवी	33
29.	पाप का मूल कारण परिग्रह	34
30.	मित्रता कैसे बनी रहे	35
31.	शिवभूति मुनिराज	36
32.	औषधि दान का फल	37
33.	विषापहार	38
34.	अध:पतन का कारण	39
35.	दया	40
36.	मुनि सेवा	41
37.	जिनेन्द्र भक्ति कामधेनु है	42
38.	हिंसा से डर	43
39.	अनोखा वैरागी	44
40.	नैतिक आदर्श	45
41.	अतिथि देवो भव	46
42.	राजा का त्याग	47

43.	धर्म रहित जीवन के परिणाम	49
44.	गुरु भक्ति	50
45.	क्रोध चाण्डाल है	51
46.	प्यार की शक्ति	52
47.	सुखी होने का तरीका	53
48.	गङ्गा बनी सिन्धु	53
49.	गृहस्थ बनूँ या साधु	54
50.	राष्ट्र प्रेम	55
51.	सेवा से सुख	56
52.	उपदेश का प्रभाव	57
53.	अन्याय के सामने मत झुको	58
54.	बादशाह का आदेश	59
55.	दुर्जन संगति का प्रभाव	60
56.	देशभक्ति	61
57.	द्वीपायन मुनि	62
58.	एकाग्रता तथा कुशलता	63
59.	सदा नहीं रहते	64
60.	चार मूर्तियाँ	65
61.	उपकार	66
62.	समर्पण	67
63.	फूलों पर शयन करने का फल	68
64.	बचपन का संस्कार	69

65.	मातृ गौरव	70
66.	कठिन परिश्रम से सफलता	71
67.	राजा और बन्दर	72
68.	संकल्प शक्ति	73
69.	भक्त कैसा हो ?	74
70.	विनय	75
71.	उपयोग का चमत्कार	75
72.	करनी का फल	76
73.	परोपकार	77
74.	प्रत्येक वस्तु का महत्त्व	78
75.	यह कैसी मित्रता	79
76.	ईमानदार व्यक्ति	80
77.	लक्ष्मी स्थिर नहीं	81
78.	गोखले की सत्यनिष्ठा	82
79.	मन्त्र की शक्ति	83
80.	जैसे को तैसा	84
81.	लालच का फल	85
82.	एक अक्षर से तीन उपदेश	86
83.	महा–वरदान	87
84.	एकत्व में शान्ति	88
85.	दुःख का कारण मेरापन	89
86.	मित्रता की पहचान	90

87.	माता–पिता ही सर्वोपरि	91
88.	बड़ों की नम्रता	92
89.	चाणक्य का आदर्श	93
90.	साधक की सहनशीलता	94
91.	उदारता	95
92.	दृष्टि ही सृष्टि है	96
93.	जीवन चरित्र का लेखन	97
94.	निश्चय–व्यवहार	98
95.	माँ की ललकार	99
96.	दाँत क्यों गिरे	100
97.	देश के प्रति आस्था	101
98.	पाठ याद हो गया	102
99.	ऐसा क्यों हुआ ?	103
100.	क्रोध का उत्तर क्षमा से	104
101.	सम्प्रेषण	105
102.	हृदय में स्थान	106
103.	मधुर वचन	107
104.	श्यालिनी ने क्यों खाया	108
105.	पिंजरे का खुला द्वार	109
106.	अहिंसा व्रत का प्रभाव	111
107.	मुनि निन्दा का फल	112
108.	अकृत पुण्य	113

109.	सबसे मँहगा माँस	115
110.	शंख का अभयदान	117
111.	दर्शन भ्रष्ट ही भ्रष्ट है	118
112.	अभक्ष्य त्याग का फल	119
113.	मछली को जीवनदान	120
114.	कर्ण की उदारता	122
115.	प्रतिशोध कभी प्रतिशोध से समाप्त नहीं होता	124
116.	कुलभूषण-देशभूषण	126
117.	इसे कहते हैं दान	127
118.	औषधि दान की महिमा	129
119.	चार अवसर	131
120.	बुढ़िया की लुटिया	134
121.	राजा-प्रजा का सम्बन्ध	137
122.	संसार वृक्ष	139
123.	महामन्त्र णमोकार का प्रभाव	141
124.	वीरसेनाचार्य की धर्मवीरता	143
125.	प्राण से बढ़कर हैं हमारे ग्रन्थ	146
126.	प्रेरक प्रसंग	147
127.	भाग्य बड़ा या पुरुषार्थ	148
128.	उदारता की जीत	149
129.	त्याग की महिमा	151

1. शास्त्र दान का फल

कुरुमणि ग्राम में एक गोविन्द नाम का ग्वाला रहता था। उसने कोटर से निकालकर एक प्राचीन शास्त्र की पूजा की तथा भक्तिपूर्वक पद्मनन्दी मुनि के लिए वह शास्त्र दिया।

उस शास्त्र के द्वारा पहले के कितने ही मुनियों ने स्वयं पूजा करके तथा दूसरों से कराकर व्याख्यान किया था और उसके बाद वे उस शास्त्र को उसी कोटर में रखकर चले गए थे।

गोविन्द निदान से मरकर उसी ग्राम में ग्राम प्रमुख का पुत्र हुआ। एक बार उन्हीं पद्मनन्दी मुनि को देखकर उसे जातिस्मरण हो गया, जिससे तप धारण कर वह कौण्डेश बहुत बड़े शास्त्रों का पारगामी मुनि हुए। यह है शास्त्र दान का फल।

2. माँ की सेवा का फल

एक बेटा अपनी अंधी माँ की आँखों में रोशनी लाने के लिए अनेक प्रयास कर रहा था लेकिन उसको सफलता नहीं मिली।

एक दिन एक देव उसकी मातृ-भक्ति की परीक्षा करने के लिए एक वैद्य का रूप बनाकर आया और बोला- ''बेटा! मैं तुम्हारी माँ की आँखों में रोशनी ला दूँगा, लेकिन तुम अंधे हो जाओगे।'' बेटे ने कहा- ''वैद्यजी! कोई बात नहीं मैं अंधा होकर भी खुश रहूँगा।'' देव ने खुश होकर आशीर्वाद, वरदान दे दिया।''जाओ, तुम भी अंधे नहीं होओगे और तुम्हारी माँ की आँखों में भी ज्योति आ जायेगी।''

शिक्षा : जो जी-जान से माँ की सेवा करता है, वह स्वयं भी सुखी होता है और उसके माता-पिता भी सुखी होते हैं।

3. कपटी पीटा जाता है

एक संगीत कक्ष में बाँसुरी, ढोलक, मंजीरा, रागपेटी, वीणा आदि वाद्ययंत्र रखे हुए थे। एक दिन एक बच्चा वहाँ आया। उसने ओठों से लगाकर बाँसुरी बजाई, ढोलक को डंडे से पीटा/ठोका और भाग गया। यह सब देख ढोलक को क्रोध आ गया। उसने बाँसुरी से पूछा, बहिन बाँसुरी! अपन दोनों संगीत में काम आती हैं फिर बच्चे तक भी इतना पक्षपात क्यों करते हैं कि तुम्हें तो ओठों से लगाते हैं और मुझे डंडे से मारते, ठोकते हैं।

बाँसुरी ने कहा – बहिन! लोग पक्षपात नहीं करते हैं अपितु वे अपन दोनों के काम के अनुसार व्यवहार करते हैं। देखो, तुमने अपनी पोल को अन्दर अच्छी तरह छिपा रखा है और मैंने अपनी पोल को सात–सात छिद्रों से बाहर दिखा दिया है। तुम छल करती हो इसलिए पीटी जाती हो और मैं छल नहीं करती, मैंने अपने दोषों को छुपाया नहीं है, इसलिए लोग मुझे ओठों से लगाते हैं।

शिक्षा : छल–कपट (किसी से छिप कर काम) कभी नहीं करना चाहिए। छल करने को लोग यहाँ डंडे मारते हैं और वह मरकर अगले भव में गाय–भैंस आदि पशु बनता है तो वहाँ पर भी डंडों की मार खानी पड़ती है।

- मायाचारी करने वालों को दुःख ही दुःख मिलता है, ऐसा जानकर मायाचारी का पूर्णतः त्याग कर देना चाहिए।

– आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज

4. प्रशंसा में नहीं बहना

एक दिन एक कौए के मुँह में रोटी का टुकड़ा देख उसको प्राप्त करने के लोभ में एक लोमड़ी उसके पास पहुँची और कौए की प्रशंसा करते हुए बोली– मामा! तुम बड़ा मीठा बोलते हो, बहुत अच्छा गाते हो, मुझे भी एक भजन सुनाओ। कौआ कुछ नहीं बोला, उसको मालूम था कि मैं बोलूंगा तो मेरे मुँह का ग्रास गिर जायेगा। लोमड़ी चापलूसी करती हुई बार–बार उसकी प्रशंसा करने लगी।

आखिर कौए को यह विश्वास हो गया कि मैं वास्तव में बहुत मीठा बोलता हूँ, अच्छा गाता हूँ वह अपनी प्रशंसा के शब्दों में बह गया और उसने बोलना शुरू किया। जैसे ही वह बोलने लगा उसके मुँह का ग्रास नीचे गिर गया। लोमड़ी ग्रास लेकर भाग गई। अतः कभी अपनी प्रशंसा में नहीं बहना चाहिए।

शिक्षा : कोई अपनी प्रशंसा करे तो यह सोचकर कि मुझसे ज्यादा गुणवान, धनवान, सुन्दर अनेक लोग हैं, गर्व नहीं करना चाहिए।

5. बैल की कथा

णमोकार मंत्र के प्रभाव को प्रकट करने वाले अनेक कथानक शास्त्रों में उपलब्ध होते हैं। जैसे–सेठ पद्मरुचि की पर्याय में रामचन्द्र जी के जीव ने मरते हुए बैल को णमोकारमन्त्र सुनाया, जिससे वह (बैल का जीव) राजपुत्र हुआ बाद में देव व मनुष्य के कुछ भवों को धारण कर विद्याधरों का स्वामी सुग्रीव हुआ, श्रीराम के साथ मित्रता स्थापित कर कुछ काल तक राज्य करने के पश्चात् श्रीराम के साथ मुनि दीक्षा धर तपश्चरण कर श्रीरामचन्द्रजी के साथ ही तुंगीगिरि से मोक्ष पधार गए।

6. णमोकार मंत्र का प्रभाव

एक दिन एक ग्वाला वन से अपने घर आ रहा था। शीतकाल का समय था, कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। उसे रास्ते में ऋद्धिधारी मुनि के दर्शन हुए, जो एक शिलातल पर बैठकर ध्यान कर रहे थे। ग्वाले को मुनिराज के ऊपर दया आयी और घर जाकर भी पुनः लौट आया तथा मुनिराज की वैय्यावृत्य करने लगा।

प्रातःकाल होने पर मुनिराज का ध्यान भंग हुआ और ग्वाले को निकट भव्य समझकर उसे णमोकारमन्त्र का उपदेश दिया। अब तो उस ग्वाले का यह नियम बन गया कि वह प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ करने पर णमोकारमन्त्र का 9 बार उच्चारण करता।

एक दिन वह गाय-भैंस चराने के लिए गया था। भैंसें नदी में कूदकर उस पार जाने लगीं, अतः ग्वाला उन्हें लौटाने के लिए अपने नियमानुसार णमोकारमन्त्र पढ़कर नदी में कूद पड़ा। पेट में एक नुकीली लकड़ी चुभ जाने से उसका प्राणान्त हो गया। वह णमोकारमन्त्र के प्रभाव से सेठ के यहाँ सुदर्शन नाम का पुत्र हुआ। शीलशिरोमणि सुदर्शन ने उसी भव से निर्वाण प्राप्त किया।

- णमोकार मन्त्र सभी प्रकार की अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाला है। आत्मशोधन का हेतु होते हुए भी नित्य जाप करने वाले के रोग, शोक, आधि, व्याधि आदि सभी बाधाएँ दूर हो जाती हैं। पवित्र, अपवित्र, रोगी, दुःखी, सुखी आदि किसी भी अवस्था में इस मन्त्र का जप करने से समस्त पाप भस्म हो जाते हैं।

– मंगलमन्त्र णमोकार : एक अनुचिन्तन

7. मन्त्र का प्रभाव

एक बार कुछ ब्राह्मण मिलकर यज्ञ कर रहे थे कि एक कुत्ते ने आकर उनकी हवन–सामग्री जूठी कर दी। ब्राह्मणों ने क्रुद्ध हो उस कुत्ते को इतना मारा कि उसके प्राण कंठगत हो गए। संयोग से महाराज सत्यंधर के पुत्र जीवन्धरकुमार उधर से आ निकले, उन्होंने कुत्ते को मरते हुए देखकर उसे णमोकार मन्त्र सुनाया।

मन्त्र के प्रभाव से कुत्ता मरकर यक्ष जाति का इन्द्र हुआ। वह अवधिज्ञान से अपने उपकारी का स्मरण कर कुमार जीवन्धर के पास आया और नाना प्रकार से स्तुति–प्रशंसा कर उन्हें इच्छित रूप बनाने और गाने की विद्या देकर अपने स्थान पर चला गया।

8. बड़ों की नहीं मानने से हानि

एक गरीब के बेटे ने बहुत मेहनत करके अच्छा ढोल बजाना सीखा। राजा ने अपने बच्चे के जन्मदिवस पर देश–देश के ढोलियों को आमंत्रित किया। वह गरीब ढोली भी अपने बेटे के साथ राजा के यहाँ ढोल बजाने गया। वहाँ आयोजित प्रतियोगिता में ढोली का लड़का अव्वल आया। राजा ने उसे स्वर्ण आभूषणों का इनाम दिया।

गरीब ढोली अपने बेटे के साथ घने जंगल से गुजर रहा था। लड़का धनप्राप्ति की खुशी में उस जंगल में ही ढोल बजाने लगा। उसके पिता ने उसे ढोल बजाने हेतु मना किया और बजाने से होने वाली हानि को बताया। लेकिन वह नहीं माना।

फल यह हुआ कि जंगल में डाकुओं का दल उनके सामने आकर खड़ा हो गया और डरा कर उनसे आभूषण लूट लिये। वे पुनः गरीब हो गये। इसका मुख्य कारण बड़ों का कहना नहीं मानना था।

9. जीवहिंसा का पाप

एक व्यापारी बहुत धनी था। एक दिन एक भिखारी उस व्यापारी के घर पर भीख माँगने गया। व्यापारी ने गरीब समझकर पाँच रुपया उस भिखारी को दे दिया। वह रुपया लेकर बाजार गया और उसने उससे सूत खरीदा। उस सूत से उसने मछली पकड़ने का एक छोटा जाल बनाया और रोज नदी पर जाकर मछलियाँ पकड़ने लगा। वह मछलियों को बाजार में ले जाकर बेचता और अपना भरण-पोषण करता। ऐसा करते हुए उसे बहुत साल हो गए।

इधर वह व्यापारी, जिसने उसे पाँच रुपया दिया था, धीरे-धीरे अपनी सारी सम्पत्ति खो बैठा। वह राजा से रंक हो गया। उसकी स्थिति उसी दिन से बिगड़ने लगी थी। जिस दिन उसने पाँच रुपया भिखारी को दिया था। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि वह मछली पकड़ने का जाल उस व्यापारी के पैसों से ही बना था। वह भिखारी मछली पकड़कर बाजार में बेचता, उसकी मछलियाँ माँसाहारी लोग खरीदकर खाते थे इसलिए जीवहिंसा का पाप भी उस व्यापारी को लगा और उसकी सारी सम्पत्ति-धन नष्ट हो गयी।

शिक्षा : हमें चाहिए कि जो भी भिखारी, साधु, फकीर अपने दरवाजे पर आये, उसे रुपया-पैसा न देकर भोजन दें।

- अहिंसा धर्म की शरण में रहने वाला हमेशा खुश रहता है और कमियाँ उसके जीवन में कभी भी नहीं रहतीं। उसका हमेशा विकासवान जीवन हुआ करता है।

– आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज

10. मीठा बोलो, सभी प्यार करेंगे

एक कौआ था। वह जहाँ बोलता बच्चे-बूढ़े सब मिलकर उसे पत्थर मारते थे। एक दिन कौए को गुस्सा आ गया। उसने सोचा, मुझे यह देश छोड़कर विदेश चले जाना चाहिए क्योंकि यहाँ के लोग मुझे पत्थर मारते हैं।

वह विदेश के लिए रवाना हो गया। रास्ते में उसे एक कोयल मिली। कोयल ने कौए से पूछा- मामा! कहाँ जा रहे हो ? कौए ने कहा- बहिन! मैं विदेश जा रहा हूँ। यहाँ के लोग बहुत दुष्ट, निर्दय हैं। मैं जैसे ही बोलता हूँ, वे मुझे पत्थर मारते हैं इसलिए मुझे जल्दी विदेश जाने दो।

कोयल ने कहा- मामा! तुम विदेश भी चले जाओगे और वहाँ पर भी यदि तुम कड़वा-कठोर, चिड़चिड़ाकर और चिल्लाकर ही बोलोगे तो वहाँ पर भी लोग तुम्हें पत्थर मारेंगे। इसलिए तुम विदेश नहीं जाओ, यहीं रहो और अपनी भाषा/बोली में मिठास लाओ।

मीठा और प्रेम से बोलो, सभी तुमसे प्यार करेंगे, देखो मुझे तो कोई पत्थर नहीं मारता है।

शिक्षा : कठोर-कड़वा बोलने वाले को सभी नापसन्द करते हैं इसलिए मीठा-मधुर, प्रेमभरा प्रेमपूर्वक बोलना चाहिए।

- अप्रिय और अहित करने वाले दोनों वचन स्वयं एवं पर के लिए दु:ख देने वाले होते हैं।

– आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज

11. सेवा और श्रम की महिमा

एक बार एक गुरुजी ने अपने शिष्यों से कहा – कोई अपने पवित्र हाथों से मेरे लिए एक गिलास पानी ले आओ। एक शिष्य तत्काल चाँदी के गिलास में पानी ले आया। गुरु गिलास लेते हुए शिष्य की हथेली की ओर देखकर बोले – बेटा! तुम्हारे हाथ तो बहुत कोमल हैं। शिष्य ने कहा – हाँ, गुरुदेव! मेरे घर पर बहुत सारे नौकर हैं जो पूरा काम कर देते हैं इसलिए मुझे कुछ भी काम नहीं करना पड़ता है।

गुरु गिलास को ओठों से लगाने वाले थे कि उनका हाथ रुक गया। वे गम्भीरता से बोले– जिन हाथों ने कभी सेवा और श्रम नहीं किया, वे हाथ पवित्र कैसे हो सकते हैं इसलिए मैं तुम्हारे हाथ का पानी नहीं पी सकता। इस बात को सुन शिष्य को बहुत दुःख हुआ। उसने उसी दिन से दुखियों की सेवा करना और श्रम करना शुरू कर दिया।

शिक्षा : हमेशा दुखियों की सेवा एवं श्रम करते रहने से शरीर और स्वास्थ्य दोनों अच्छे रहते हैं।

- सेवा के समय यदि ख्याति, लाभ नाम बड़ाई की बात आ जाती है तो सब किरकिरा हो जाता है।

  – आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज

- जो सच्ची सेवा करने वाला है, उसका प्रचार तो अपने आप होने वाला है।

  – महात्मा गाँधी

12. गुरुभक्ति

एक दिन कर्ण के गुरु बहुत थक गए थे। कर्ण ने उनकी थकान देखकर अपनी गोदी में उनका सिर रख लिया। थोड़ी ही देर में उनकी नींद लग गई। कर्ण उनके गुणों का चिन्तन कर रहा था तभी एक विषैला कीड़ा आसन के नीचे आकर बैठ गया और कर्ण के शरीर को कुतर-कुतर कर खाने लगा। कर्ण को बहुत तकलीफ होने लगी। वह सोचने लगा, ''क्या करूँ ? कीड़े को कैसे हटाऊँ, पाँव हटाये बिना यह कीड़ा नहीं हट सकता और पाँव हिलाने पर गुरुजी की नींद खुल जाएगी। गुरु जी की कच्ची नींद नहीं तोडूँगा। चाहे वह शरीर का रक्त पी ले।

कर्ण अचल आसन से बैठा रहा, मुँह से आह तक नहीं निकाली किन्तु जब खून की गर्म-गर्म धारा का गुरुजी के शरीर से स्पर्श हुआ तो उनकी नींद खुल गयी। तब गुरुजी की आज्ञा से उसने कीड़े को हटाया।''

शिक्षा : गुरु के प्रति इतना अद्‌भुत समर्पण होने से कर्ण मरने के बाद भी आज जीवित है, अतः समर्पित भाव से गुरु-भक्ति में तत्पर रहना चाहिए।

- यह बात ठीक है कि आँखें हमारी हैं, दृष्टि हमारी है, लेकिन उसका उपयोग कैसे करना है ? यह हमें गुरु ही सिखलाते हैं। यही तो गुरु की महिमा है।

– आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज

(सागर बूँद समाय)

13. माँस खाने से नरक दु:ख

किसी समय पाँचों पाण्डव माता कुंती सहित श्रुतपुर नगर में एक वणिक के यहाँ ठहर गए। रात्रि में उसकी स्त्री का करुण क्रंदन सुनकर माता कुंती ने कारण पूछा। उसने कहा – माता इस नगर का बक नामक राजा मनुष्य का माँस खाने लगा था, तब लोगों ने उसे राज्य से हटा दिया। तब भी वह वन में रहकर मनुष्यों को मार मारकर खाने लगा। तब लोगों ने यह निर्णय किया कि प्रतिदिन बारी–बारी से एक–एक घर से एक–एक मनुष्य को देना चाहिए। दुर्भाग्य से आज मेरे घर की बारी है। इतना सुनकर कुंती ने भीम को सारी घटना सुनाई। प्रातःकाल में भीम ने उसके लड़के के बारी में पहुँच कर उस बक राजा के साथ भयंकर युद्ध करके उसे समाप्त कर दिया। वह मरकर सातवें नरक चला गया जो कि वहाँ पर आज तक दु:ख उठा रहा है।

14. शान्ति स्थापना ही सच्चा लाभ

पोरबंदर के अब्दुला और उनके भाई तैयबजी का मुकदमा दक्षिण अफ्रीका में चल रहा था। उनकी वकालत में महात्मागाँधी को दक्षिण अफ्रीका जाना पड़ा। इस मुकदमें में गाँधीजी को एक लाख से भी अधिक रुपया मिलना था किन्तु गाँधीजी ने दोनों भाईयों में समझौता करा दिया और अपने एक लाख रुपए ठुकरा दिए। एक मित्र ने कहा–आपने एक लाख रुपए ठुकरा दिया। गाँधीजी ने कहा–दो घरों की आग बुझाकर शान्ति स्थापना करा देना क्या कम लाभ है ? बंधुओं फूट पैदा करना तो दुर्जनों का काम है, सज्जन तो फूट को समाप्त करने का काम करते हैं। निज लाभ के पीछे किसी का घर नहीं उजाड़ते।

15. मन्त्र मनन से उद्धार

एक दिन बसन्तोत्सव के समय धनपाल राजा की रानी बहुमूल्य हार पहनकर वन-विहार के लिए जा रही थी, जब उसके हार पर बसन्तसेना वेश्या की दृष्टि पड़ी तब वह उस पर मोहित हो गयी। अपने प्रेमी दृढ़सूर्य से कहने लगी कि - ''इस हार के बिना तो मेरा जीवित रहना सम्भव नहीं। अतः किसी भी तरह हो, इस हार को ले आना चाहिए।''

दृढ़सूर्य राजमहल में गया और उस हार को चुराकर ज्यों ही निकला, त्यों ही पकड़ लिया गया। दृढ़सूर्य सूली पर लटकाया जा चुका था, पर अभी उसके शरीर में प्राण शेष थे। संयोगवश उसी मार्ग से धनदत्त सेठ जा रहा था। दृढ़सूर्य ने उससे पानी पिलाने को कहा। सेठ ने उत्तर दिया -''मेरे गुरुने मुझे णमोकार मन्त्र दिया है। अतः मैं जब तक पानी लाता हूँ, तब तक तुम इसे स्मरण करो।''

इस प्रकार दृढ़सूर्य को णमोकारमन्त्र सिखलाकर धनदत्त पानी लेने चला गया। दृढ़सूर्य ने णमोकारमन्त्र का जोर-जोर से उच्चारण आरम्भ किया। आयु पूर्ण होने से उस चोर का मरण हो गया और वह णमोकारमन्त्र के प्रभाव से सौधर्मस्वर्ग में देव हुआ।

- णमोकार मंत्र का माहात्म्य अद्भुत है, जिसके श्रवण मात्र से पशु-पक्षियों ने भी सद्गति प्राप्त की।

- आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज

(सागर बूँद समाय)

16. प्रिय वचन

एक राजा, एक आँख वाला था, किन्तु वह बड़ा विवेकी एवं बुद्धिमान था। उसने अपने राज्य के तीन श्रेष्ठ चित्रकारों को बुलाकर कहा कि–''तुम एक–एक सुंदर चित्र तैयार करो, जो चित्र मुझे पसंद आयेगा, उस चित्रकार को भारी पुरुस्कार दिया जायेगा।'' चित्रकारों ने अपने–अपने चित्र बनाकर तैयार कर दिये। निर्धारित समय पर राजा अपने मंत्रियों के साथ चित्र देखने पहुँचा।

पहले वाले चित्रकार ने राजा को दोनों आँख वाला चित्र में दिखलाया। दूसरे चित्रकार ने राजा को हू–ब–हू (ज्यों का त्यों) अर्थात् एक आँख वाला दिखलाया। किन्तु तीसरे चित्रकार ने राजा को पराक्रम की मुद्रा में निशाना साधते हुए दर्शाया।

पहले वाले चित्र को देखकर राजा ने कहा कि–''चित्र असत्य है किन्तु प्रिय है।'' दूसरे वाले चित्र को देखकर राजा ने कहा कि–''चित्र सत्य है किन्तु अप्रिय है।'' तीसरे चित्र को देखकर राजा ने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा कि –''इस चित्रकार का चित्र सत्य भी है और प्रिय भी है, क्योंकि उसमें निशाना साधते हुए राजा को एक आँख वाला दर्शाया है।

तीर के छोर से निशाना साधते हुए जिसमें राजा की कानी आँख दब गई है अर्थात् बंद है। इस तरह उसने राजा की ज्यों की त्यों मुद्रा को दर्शाया है तथा देखने में भी अप्रिय नहीं है।'' इस तरह तीसरे चित्रकार को राजा ने श्रेष्ठ चित्रकार घोषित करते हुए भारी इनाम दिया।

शिक्षा : सही कहा है कि – सत्य ऐसा होना चाहिए जो कि सत्य भी हो, साथ ही प्रिय भी।

17. स्वार्थी भूखे रहे

एक बार एक राजा ने देवता (निःस्वार्थी) और राक्षस (स्वार्थी) मनुष्यों को भोजन के लिए निमन्त्रण दिया और उनकी परीक्षा के लिए भोजन के पहले उनके हाथों को इस ढंग से बँधवा दिया कि वे भोजन अपने मुँह में न रख पायें और उनके सामने षट् रस मिश्रित भोजन परोस दिया।

स्वार्थी राक्षस जैसे लोग अपने भोजन की चिंता में और हाथ बँधे होने के कारण कुछ नहीं खा पाये, सोचते ही रह गए कि हम भोजन कैसे करें ? लेकिन जो देवता के समान परोपकारी थे, वे अपनी चिंता छोड़कर अपनी थालियों में से भोजन ले-लेकर सामने वाले देवताओं को खिलाने लग गए। दूसरों को खिलाने से दूसरों ने भी उनको खिलाना प्रारम्भ कर दिया। फलतः परोपकार करने से दोनों का पेट भर गया और राक्षस वृत्ति वाले लोग भूखे ही गए।

शिक्षा : परोपकार करने वाला कभी भूखा नहीं रहता इसलिए हमेशा दूसरों को खिलाकर खाना चाहिए।

- जिनके हृदय में सदैव परोपकार की भावना रहती है, उनकी आपदाएँ समाप्त हो जाती हैं और पग-पग पर धन की प्राप्ति होती है।

  – चाणक्य

- उपकार करके कहना बैर करने के बराबर है।

  – नीतिवाक्यामृत

18. वेश्या सेवन

चम्पापुर के भानुदत्त सेठ और भार्या देविला के पुत्र का नाम चारुदत्त था। वह सदैव धार्मिक पुस्तकों को पढ़ने में अपना समय व्यतीत करता रहता था। वहीं के सेठ सिद्धार्थ ने अपनी पुत्री मित्रवती का विवाह चारुदत्त के साथ कर दिया किन्तु चारुदत्त अपने पढ़ने लिखने में इतना मस्त था कि अपनी पत्नि के पास बहुत दिनों तक गया ही नहीं।

तब चारुदत्त का चाचा रुद्रदत्त अपनी भावज की प्रेरणा से उसे गृहस्थ आश्रम में फँसाने हेतु एक बार वेश्या के यहाँ ले गया और उसे चौपड़ खेलने के बहाने वहीं छोड़कर चला गया।

उधर चारुदत्त बसंतसेना वेश्या में बुरी तरह फँसकर कई करोड़ की सम्पत्ति समाप्त करके घर भी गिरवी रख दिया। अंत में बसंतसेना वेश्या की माता ने चारुदत्त को धन रहित जानकर रात्रि में सोते समय उसको बाँधकर संडास में डाल दिया। सुबह नौकरों ने देखा कि सूकर उसका मुख चाट रहे हैं तब संडास से निकालकर उसकी घटना सुनकर सब उसे धिक्कारने लगे।

- कोई भी व्यसन हो, वह दुःखदायी ही सिद्ध होता है।
- व्यसनी के पास कभी विद्या टिक नहीं सकती, व्यसनी पर कोई विश्वास नहीं करता।
- बुरी लत व्यसनी को लात मारकर नरक (पतन) के गड्ढे में गिरा देती है।

– अज्ञात

19. शिकार करना

उज्जयिनी नगरी के राजा ब्रह्मदत्त शिकार खेलने के बड़े शौकीन थे। एक दिन वन में ध्यानारुढ़ दया मूर्ति मुनिराज के निमित्त से उन्हें शिकार का लाभ नहीं हुआ। दूसरे दिन भी ऐसे ही शिकार न मिलने से राजा क्रोधित हो गया और जब मुनिराज आहार चर्या के लिए गए तब उसने बैठने की पत्थर की शिला को अग्नि से तपाकर खूब गरम कर दिया।

मुनिराज आहार करके आये और उसी पर बैठ गए। उसी समय अग्नि सदृश गरम शिला से उपसर्ग समझ कर उन्होंने चारों प्रकार के आहार का त्याग कर दिया। उस गरम शिला से मुनिराज को असह्य वेदना हुई फिर भी वे आत्मा को शरीर से भिन्न समझ कर ध्यानाग्नि द्वारा अष्टकर्मों का नाश करके अन्तकृत केवली हो गए अर्थात् 48 मिनिट में ही केवली होकर मोक्ष चले गए।

इधर सात दिन के भीतर ही राजा को भयंकर कुष्ठ रोग हो गया और अग्नि से जलकर वह मरा और सातवें नरक में चला गया। वहाँ से निकल कर तिर्यंच गति के दुःखों को भोगकर पुनः नरक चला गया। देखो, शिकार खेलने के कारण ब्रह्मदत्त को नरक जाना पड़ा।

- वीर वह है जो दूसरों को जख्मी नहीं करता। दूसरों को मारना, उनके जीवन के साथ खिलवाड़ करना यह तो हृदयहीनता की निशानी है। भोले-भाले निर्दोष पशुओं के साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार करना मानवता नहीं दानवता है।

– अज्ञात

20. चोरी करना

बनारस में शिवभूति ब्राह्मण था। उसने अपनी जनेऊ में कैंची बाँध ली थी और कहता था कि यदि मेरी जिह्वा झूठ बोल दे तो मैं उसी क्षण उसे काट डालूँ इसलिए उसका नाम सत्यघोष पड़ गया।

एक बार सेठ धनपाल पाँच-पाँच करोड़ के चार रत्न उसके पास रखकर व्यापार करने चला गया। जहाज डूबने से बेचारा निर्धन हो गया। सत्यघोष के पास अपने रत्न माँगने आया तो सत्यघोष ने उसे पागल कहकर निकलवा दिया।

छह महीने तक उस सेठ को रोते चिल्लाते देखकर रानी ने युक्ति पूर्वक उसके रत्न वहाँ से मंगवा लिए। राजा ने सत्यघोष के लिए तीन दण्ड कहे-

1. गोबर खाना, 2. मल्लों के मुक्के खाना, 3. सब धन देना।

क्रम से वह लोभी तीनों दण्ड भोगकर राजा के भण्डार में सर्प हो गया तथा कालान्तर में अनेक कष्ट उठाये।

- चोरी करने वाला धन जो प्राप्त कर लेता है किन्तु उसका शान्ति, सम्मान और सन्तोष नष्ट कर हो जाता है। चोरी करने वाले के मन में अशान्ति की ज्वालाएँ धधकती रहती हैं। उसका मन सदा भय से आक्रान्त रहता है। उसका आत्म-सम्मान नष्ट हो जाता है, उसमें आत्म-ग्लानि पनपने लगती है।

– अज्ञात

21. परस्त्री सेवन

एक समय श्री रामचन्द्रजी, सीताजी व लक्ष्मणजी दण्डक वन में ठहरे थे। वहाँ पर खरदूषण के साथ युद्ध में रावण जा रहा था, रास्ते में रावण ने वहाँ सीता को देखा उसके ऊपर मुग्ध होकर युक्ति से उसका हरण कर लिया।

सभी के समझाने पर भी जब वह नहीं माना, तब रामचन्द्र ने लक्ष्मण को साथ लेकर अनेक विद्याधरों की सहायता से रावण से युद्ध ठान लिया। बहुत ही भयंकर युद्ध हुआ। अन्त में रावण ने अपने चक्ररत्न को लक्ष्मण पर चला दिया।

वह चक्ररत्न लक्ष्मण की प्रदक्षिणा देकर उनके हाथ में आ गया। लक्ष्मण ने उस समय भी रावण से कहा कि – तुम सीताजी को वापस कर दो। रावण नहीं माना तब लक्ष्मण ने चक्ररत्न से रावण का सिर काट डाला। वह मरकर नरक में गया। वहाँ आज तक असंख्य दुःखों को भोग रहा है।

- परस्त्रियों में अनुराग बुद्धि रखने वाले व्यक्ति को जो इसी जन्म में चिंता, आकुलता, भय, द्वेषभाव, बुद्धि का विनाश, अत्यन्त संताप, भ्रांति, भूख, प्यास, आघात, रोगवेदना और मरण रूप दुःख तो होते ही हैं; किन्तु परस्त्री सेवनजनित पाप के प्रभाव से जन्मांतर में नरकगति के प्राप्त होने पर अग्नि में तपायी हुई लौहमयी स्त्रियों के आलिंगन से चिरकाल तक दुःख प्राप्त करते हैं, इसलिए धर्मात्मा पुरुष आजीवन परस्त्री सेवन का परित्याग करते हैं।

22. गुस्से की अचूक दवा

एक सास-बहू की हमेशा लड़ाई होती रहती थी। दोनों को एक-दूसरे से ज्यादा गुस्सा आता था। बहू सास से बहुत परेशान थी तो बहू से सास भी परेशान थी। एक दिन बहू ने सोचा, वैद्यों के पास शायद गुस्से की कोई दवाई मिल जावे। वह एक वैद्य के पास पहुँची।

वैद्य संत के रूप में दुखियों का इलाज करता था। उसने वैद्य से कहा- ''वैद्यजी! मुझे बहुत गुस्सा आता है। आप ऐसी कोई दवाई दे दो, जिससे मेरा गुस्सा समाप्त हो जावे।'' वैद्य ने गुस्से का कारण, समय (कितनी देर तक आता है)तथा उसमें होने वाली प्रक्रिया आदि सब पूछकर एक बॉटल दे दी और बोले-''देखो, जब तुम्हें गुस्सा आवे इसमें से एक-दो घूँट मुँह में भर लेना एवं 15-20 मिनट के बाद जब उसमें मुँह की लार मिल जावे, गले उतार लेना। यदि 15-20 मिनट मुँह में भरकर नहीं रखोगी तो दवाई काम नहीं करेगी।'' बहू ने बॉटल ले ली और घर जाकर जैसे ही गुस्सा आया एक-दो घूँट मुँह में भर लिया। सास गुस्से में यद्वा-तद्वा (मनमाना) बोले जा रही थी लेकिन बहू के मुँह में दवाई गले नहीं उतारनी थी तब तक (15-20 मिनट में) सास का गुस्सा शान्त हो गया था क्योंकि बहू ने उसकी बातों का कोई उत्तर नहीं दिया था।

इस प्रकार दवाई के प्रयोग से 4-5 दिन में घर का लड़ाई-झगड़ा बन्द हो गया। सच है अकेला व्यक्ति कभी लड़ नहीं सकता और बहू को बोलना नहीं था। वह दवाई कुछ नहीं थी, गुस्से के समय मौन रखने के लिए वैद्यजी ने बोतल में पानी भरकर दे दिया था।

शिक्षा : स्वयं को या और किसी को यदि गुस्सा आ रहा हो तो 15-20 मिनट मौन रख लेने से कभी लड़ाई नहीं होती है।

23. जल्दबाजी नहीं करना

महाकवि भारवि के काव्यसृजन की सफलता की चर्चा चारों ओर फैली हुई थी लेकिन कवि के मन में यह टीस थी कि उनके पिता ने उसके काव्य की कभी प्रशंसा नहीं की। एक दिन वे इस बात से क्रोधित होकर पिता को मारने की सोच रहे थे तभी वहाँ उनके माता-पिता आ पहुँचे। उन्हें देख कवि एक ओर छिप गए। माता-पिता को इसका कुछ भी पता नहीं चला।

माता-पिता आकाश में फैली चाँदनी का आनन्द ले रहे थे। पिता ने कहा- ''आज की चाँदनी ऐसी फैल रही है मानों मेरे प्यारे पुत्र की काव्य-कीर्ति ही फैल रही हो।'' यह सुन माँ चौंकी और बोली- ''जब आप यह मानकर चलते हैं कि भारवि का काव्य बहुत ही उत्तम-कोटि का है तो उसके सामने उसकी प्रशंसा न करके निन्दा क्यों करते हैं ?'' पिता बोले-''भोली! यह सब दिखावटी निन्दा है, नजर (दृष्टिदोष) न लग जावे। क्या माता अपने पुत्र के माथे पर काला टीका नहीं लगाती है ? मैं भी उसकी निन्दा इसलिए करता हूँ कि उसे अपनी कला का अहं न हो जावे। यदि वह अहं में अकड़ जावेगा तो आगे नहीं बढ़ सकेगा।'' यह सुन भारवि सन्न रह गए। उन्होंने पिता के चरणों में गिरकर सारी बात कह डाली और प्रायश्चित्त किया।

शिक्षा : गलतफहमी में पड़कर बिना सोचे-समझे कुछ भी काम नहीं करना चाहिए। यदि भारवि जल्दबाजी में पिता को मार देता तो न कीर्ति रहती और न काव्यसृजन की क्षमता और अगला भव भी बिगड़ जाता।

24. अभयदान का फल

एक गाँव में एक कुम्हार और नाई ने मिलकर एक धर्मशाला बनवाई। कुम्हार ने एक दिन एक मुनिराज को लाकर धर्मशाला में ठहरा दिया। तब नाई ने दूसरे दिन मुनि को निकालकर एक संन्यासी को लाकर ठहरा दिया। इस निमित्त से दोनों लड़कर मरे और कुम्हार का जीव सूकर हो गया तथा नाई का जीव व्याघ्र हो गया।

एक बार जंगल की गुफा में मुनिराज विराजमान थे। पूर्व संस्कार से यह व्याघ्र उन्हें खाने को आया और सूकर ने उन्हें बचाना चाहा। दोनों लड़ते हुए मर गए। सूकर के भाव मुनिरक्षा के थे अतः वह मरकर देवगति को प्राप्त हो गया और व्याघ्र हिंसा के भाव से मरकर नरक में चला गया। देखो ! वसतिदान के माहात्म्य से सूकर ने स्वर्ग प्राप्त कर लिया।

25. गंधमित्र की कथा

अयोध्यानगरी के राजा विजयसेन थे, जिनकी रानी विजयमति थी। उनके दो पुत्र जयसेन और गन्धमित्र थे। विजयसेन महाराज को वैराग्य हो जाने से उन्होंने जयसेन को राज्य दे दिया और गन्धमित्र को युवराज का पद देकर सागरसेन मुनि के पास जाकर मुनि हो गए।

गन्धमित्र ने राज्य को जीतकर जयसेन को भगा दिया। जिससे वह गन्धमित्र को मारने का उपाय सोचने लगा। गन्धमित्र घ्राण इन्द्रिय में आसक्त था, वह स्त्रियों के साथ सरयू नदी में हमेशा जल क्रीड़ा करता। यह जानकर जयसेन ने विष से युक्त नाना सुगन्धित पुष्प ऊपर से उपाय पूर्वक छोड़ दिए। जिन्हें सूँघकर गन्धमित्र मर गया और नरकगति को प्राप्त हुआ।

26. जुआ व्यसन से दुर्दशा

हस्तिनापुर के राजा धृतराज के धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर तीन पुत्र थे। धृतराष्ट्र के दुर्योधन आदि सौ पुत्र हुए और पाण्डु के युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव ये पाँच पुत्र हुए। दुर्योधन आदि कौरव तथा युधिष्ठिर आदि पाण्डव कहलाते थे। ये सब एक साथ ही राज्य करते थे।

कुछ दिन बाद कौरवों की पाण्डवों के प्रति ईर्ष्या देखकर भीष्म पितामह आदि बुजुर्गों ने कौरवों और पाण्डवों में आधा आधा राज्य बाँट दिया किन्तु इस पर दुर्योधन आदि कौरव अशांति ही किया करते थे।

किसी समय कौरव और पाण्डव जुआ खेलने लगे, उस समय दैववश दुर्योधन से युधिष्ठिर हार गए। यहाँ तक कि अपना राज्य तक जुए में हार गए। तब दुर्योधन ने दुष्टता वश बारह वर्ष तक उन्हें वन में घूमने का आदेश दे दिया और दुःशासन ने द्रौपदी की चोटी पकड़ घसीटकर भारी अपमान किया किन्तु शील शिरोमणि द्रौपदी का वह कुछ भी बिगाड़ न सका। पाँचों पाण्डव द्रौपदी को साथ लेकर बारह वर्षों तक इधर-उधर घूमे और बहुत ही कष्ट उठाये। इसलिए जुआ खेलना महापाप है।

- इस लोक में अग्नि, विष, चोर और सर्प तो अल्प दुःख देते हैं, किन्तु जुआ का खेलना मनुष्य के हजारों लाखों भवों में दुःख को उत्पन्न करता है।

वसुनंदि श्रावकाचार, गाथा 65

27. महासती अत्तिमब्बे

चालुक्य वंश के महादण्डनायक वीर नागदेव की पत्नी थी। एक बार नागदेव युद्ध करते हुए शत्रु को खदेड़ते हुए उसे गोदावरी के उस पार तक ले गए थे। पीछे से गोदावरी में भयंकर बाढ़ आ गयी। डर यह था कि शत्रु को यदि बाढ़ का पता लग गया तो वह नागदेव को पीछे खदेड़ देगा और सब नदी में डूबकर मरण को प्राप्त हो जायेंगे। यह भी समाचार आया कि नागदेव जीत तो गए हैं पर अर्द्धमृत से हो गए हैं। सती अत्तिमब्बे उनको अपने खेमे में लाना चाहती थी। परन्तु नदी के उफान के कारण मजबूर थी। वह अचानक तेजी से निकली और नदी के किनारे खड़े होकर कहने लगी कि – ''यदि मैं पक्की जिनभक्त और अखण्ड पतिव्रता होऊँ तो हे गोदावरी नदी! मैं तुझे आज्ञा देती हूँ कि तेरा प्रवाह उतने समय के लिए रुक जाए जब तक हमारे परिवारी जन इस पार नहीं आ जाते।''

तुरन्त ही नदी का प्रवाह घट गया और स्थिर हो गया। वह गई और अपने पति को ले तो आई पर बचा न सकी। शेष जीवन उसने उदासीन धर्मात्मा श्राविका के रूप में घर में बिताया। उसने स्वर्ण एवं रत्नों की 1500 जिन प्रतिमाएँ बनवाकर विभिन्न मंदिरों में विराजमान कीं। महाकवि पोन्न के शांतिपुराण की कन्नड़ भाषा में 1000 प्रतियाँ लिखाकर शास्त्र भण्डारों में वितरित कीं। निरन्तर दान देने के कारण उसे '**दान चिन्तामणि**' कहा जाता था।

- देश में एकता, शांति और संस्कृति के संरक्षणार्थ जो भी कदम उठाये जायें, वह सब स्वागत के योग्य हैं।

– आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज

28. महारानी शान्तलादेवी

महारानी शान्तला महाराज विष्णुवर्द्धन पोयसल की पट्टमहिषी थीं। राजा की लक्ष्मीदेवी आदि अन्य कई रानियाँ थीं, जिन सबमें प्रधान एवं ज्येष्ठ होने के कारण यह पट्टमहादेवी कहलाती थीं, क्योंकि राजा की अन्य पत्नियों को यह नियंत्रण में रखती थीं। अपनी सुन्दरता एवं संगीत, वाद्य, नृत्य आदि कलाओं में निपुणता के लिए वह विदुषीरत्न सर्वत्र विख्यात थीं।

महारानी शान्तला बड़ी जिनभक्त और धर्मपरायण थीं। सन् 1122 में श्रवणबेलगोला में अपने नाम पर अत्यन्त सुन्दर एवं विशाल जिनालय बनवाया था। इस जिनालय में भगवान शान्तिनाथ की पाँच फुट ऊँची कलापूर्ण प्रभा युक्त मनोज्ञ प्रतिमा प्रतिष्ठापित की थी। महारानी ने 1123 ई. में जिनाभिषेक के लिए गंग समुद्र नाम के सुन्दर सरोवर आदि के लिए राजा की प्रसन्नता से प्राप्त एक ग्राम स्वगुरु को भेंट किया था। सन् 1028 की चैत्र शुक्ल पंचमी सोमवार के दिन महाप्रतापी विष्णुवर्धन होयसल की इस प्रिय पट्टमहादेवी महारानी शान्तला ने शिवगंगे नामक स्थान में सम्भवतया अपने गुरु की उपस्थिति में धर्मध्यान पूर्वक स्वर्ग गमन किया।

शिक्षा : हमें अपने धन का सदुपयोग करना चाहिए।

- विनय, वात्सल्य, एकता तीनों रत्नत्रय के समान हैं, समाज की संरचना में इनका बहुमूल्य योगदान है।

– आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज

(सागर बूँद समाय)

29. पाप का मूल कारण परिग्रह

एक बार दो भाई धन कमाने के लिए परदेश गए। वहाँ दोनों ने मिलकर बहुत धन कमाया। वे दोनों धन लेकर घर आ रहे थे। रास्ते में बड़े भाई के मन में पाप आ गया। उसने सोचा-यदि मैं छोटे भाई को मार दूँ तो पूरा धन मुझे मिल जायेगा। बड़ा भाई इस प्रकार विचार कर रात्रि में सो गया।

छोटा भाई जाग रहा था। उसके मन में भी वैसे ही भाव उत्पन्न हुए जैसे बड़े भाई के हुए थे लेकिन कुछ ही देर में उसकी बुद्धि पलट गई, वह अपने को धिक्कारने लगा। उसे अपने आप पर बहुत क्रोध आया। उसने पूरा धन जो सिक्कों के रूप में था, नदी में बहा दिया।

सिक्कों के गिरने की आवाज सुनकर बड़े भाई की नींद खुल गई, उसने उठकर पूछा "भैया! तुमने यह क्या किया ?" छोटे भाई ने कहा- "भैया! इस धन के कारण मेरे भाव बिगड़ गए, मेरे भाव तुम्हें मारने के हो गए। अतः मैंने पूरे सिक्के (धन) नदी में फेंक दिए।" बड़े भाई ने कहा- "भाई! तुमने बहुत अच्छा किया क्योंकि मेरे भी इस धन के कारण ऐसे ही भाव बिगड़ गए थे।"

शिक्षा : बहुत धन इकट्ठा नहीं करना चाहिए। धन आने पर दान-परोपकार आदि पुण्य कार्यों में खर्च कर देना चाहिए, क्योंकि अधिक परिग्रह के होने पर भाव खराब होने लगते हैं; नैतिकता, सदाचार समाप्त होने लगता है।

30. मित्रता कैसे बनी रहे

दो घनिष्ट मित्र थे। वे व्यापार–व्यवसाय के कारण अलग–अलग गाँव में रहने लगे थे। उन दोनों का व्यापार आदि के निमित्त से एक–दूसरे के यहाँ आना–जाना बना रहता था। एक दिन एक मित्र ने दूसरे मित्र को पत्र लिखा कि – यदि लाल रंग का अंगोछा मिले तो सम्हाल कर रख लेना। अंगोछा ढूँढा पर नहीं मिला क्योंकि सर्दी के बिस्तरों को बाँध कर रख दिया था, उनको बिखेरने की जरूरत न समझकर समाचार दे दिए कि अंगोछा नहीं मिला है।

मित्र हमेशा की तरह मित्र के यहाँ आता–जाता रहा। दीपावली पर मकान की सफाई के समय बिस्तर धूप में डालें गए। उसमें अंगोछा मिला, जिसमें दस हजार के नोट निकले। अंगोछा देखकर याद आया कि एक बार मित्र का पत्र आया था, उसने अंगोछा संभाल कर रखने के लिए कहा था।

मित्र शीघ्र ही मित्र के पास गया और उलाहना देते हुए बोला– ''आप भी खूब हैं, इतनी बड़ी रकम का जिक्र भी नहीं किया, सिर्फ अंगोछे के लिए लिख दिया और हमारे मना लिख देने पर कभी इशारा तक नहीं किया। कोई नौकर ले गया होता, चूहे कुतर गए होते तो जीवन भर हमारा मुँह काला रहता।''

मित्र हँसकर बोला– ''भाई जितनी बात लिखनी थी वह तो लिख दी। सोचा, समझ जाओगे। दो आने के अंगोछे के लिए दो पैसे का कार्ड कैसे खराब करता। मैं अपनी असावधानी के लिए तुम्हें क्यों परेशान करता ?''

31. शिवभूति मुनिराज

किसी ग्राम में संसार, शरीर, भोगों से भयभीत एक शिवभूति रहता था। नगर के निकट ही मुनि संघ को आया सुन वह उनके दर्शनार्थ पहुँचा। दर्शन के पश्चात् उसने आचार्य श्री से दुखों से मुक्ति का उपाय पूछा – तब आचार्य श्री बोले – हे भव्य प्राणी! यदि तुम दुखों से मुक्त होना चाहते हो तो श्रमणत्व/मुनित्व को अंगीकार करो। परम वैराग्य युक्त हो उसने मुनि दीक्षा ग्रहण की।

ज्ञान का क्षयोपशम कम होने के कारण गुरु जो भी पढ़ाते थे वह शीघ्र ही भूल जाते थे। अतः गुरु ने **तुष मास भिन्नं** इन अक्षरों का ही पाठ करने का उपदेश दिया। जिसे वे शिवभूति मुनिराज दिन-रात रटते थे। वे आत्मा को शरीर तथा कर्मों के समूह से भिन्न जानते। किन्तु शब्द ज्ञान उनके पास नहीं था।

एक दिवस वे आहारचर्या को निकले किन्तु रास्ते में गुरु वाक्य भूल गए तथा देखा कि एक महिला दाल रूप परिणत उड़दों को पानी में डुबा कर तुसों (छिलकों) को पृथक् कर रही है। देखकर उन्होंने पूछा आप यह क्या कर रही हो ? उन्होंने बताया मैं दाल और छिलकों को पृथक् कर रही हूँ क्योंकि दाल पृथक् है और छिलका पृथक् है। इतना सुनते ही बोध हो गया। इसी प्रकार मेरी आत्मा पृथक् है और शरीर पृथक् है। वे वापस अपने स्थान में लौट आए और आत्मध्यान में लीन हो गए। कुछ ही क्षणों में उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई। गुरु से पहले ही भावों की निर्मलता से शिष्य ने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। केवलज्ञानी हो अनेक भव्य जीवों को धर्म का उपदेश प्रदान कर मोक्ष चले गए।

32. औषधि दान का फल

किसी समय मुनिदत्त योगिराज महल के पास एक गड्ढे में ध्यान लीन थे। नौकरानी ने उन्हें हटाना चाहा। जब वे नहीं उठे तब उसने सारा कचरा इकट्ठा करके मुनिराज पर डाल दिया। प्रातः राजा ने वहाँ से मुनि को निकाल कर विनय से सेवा की। उस समय नौकरानी नागश्री ने भी पश्चाताप करके मुनि के कष्ट को दूर करने हेतु उनका औषधि से उपचार कर मुनि की भरपूर सेवा की। अंत में मरकर यह वृषभसेना हुई। जिसके स्नान के जल से सभी प्रकार के रोग-विष नष्ट हो जाते थे। आगे चलकर वह राजा उग्रसेन की पटरानी हो गई। किसी समय रानी के शील में आशंका होने से राजा ने उसे समुद्र में गिरवा दिया किन्तु रानी के शील के माहात्म्य से देवों ने सिंहासन पर बैठाकर उसकी पूजा की।

नौकरानी ने जो मुनि पर उपसर्ग किए थे, उसके फलस्वरूप उसे रानी अवस्था में भी कलंकित होना पड़ा और जो उसने मुनि की सेवा करके औषधिदान दिया था, उसके प्रभाव से उसे ऐसे सर्वोषधि ऋद्धि प्राप्त हुई कि जिसके प्रभाव से उसके स्नान के जल से सभी के कुष्ठ आदि भयंकर रोग और विष आदि दूर हो जाते थे, इसलिए औषधिदान अवश्य देना चाहिए।

- दान से मनुष्य की मनुष्यता तृप्त होती है और परम आनंद की प्राप्ति होती है। संसार के प्रत्येक धर्म, दर्शन में दान को सर्वोपरि माना गया है।
- औषधिदान देने वाला रोगी नहीं होता है, औषधि दान देने से कीर्ति, सुन्दरता और यश की प्राप्ति होती है।

33. विषापहार

द्विसंधान महाकाव्य के रचयिता कविराज धनञ्जय पूजन में लीन थे। उनके सुपुत्र को सर्प ने डस लिया था। घर से कई बार खबर आने पर भी वे निस्पृह भाव से पूजन में पूर्णतया तन्मय रहे। इकलौते पुत्र की गंभीर स्थिति देख कुपित होकर उनकी धर्मपत्नि बच्चे को लेकर जिनमंदिर में आ गईं और उसी मूर्च्छित अवस्था में पुत्र को पति के सामने डाल दिया।

पूजा से निवृत्त हो धनञ्जय ने विचार किया। जिन भक्ति का प्रभाव यदि आज नहीं दिखाया तो लोगों की श्रद्धा धर्म से उठ जायेगी। तत्काल विषापहार स्तोत्र की रचना करते हुए भक्ति में लीन प्रभु से कहने लगे – हे प्रभो! इस बालक का विष उतारने के लिए मैं मणि, मंत्र, औषधि की खोज में भटकने वाला नहीं, मुझे तो आप रूप कल्पवृक्ष का ही आश्रय है, सत्य है कि हे भगवन्! लोग विषापहार मणि, औषधियों, मंत्र और रसायन की खोज में भटकते फिरते हैं, वे नहीं जानते कि ये सब आपके ही पर्यायवाची नाम हैं।

इधर स्तोत्र रचना हो रही थी उधर पुत्र का विष उतर रहा था। स्तोत्र पूरा होते ही बालक निर्विष होकर उठ बैठा, चारों ओर जैनधर्म की जय-जयकार गूँज उठी धर्म की अपूर्व प्रभावना हुई।

विद्वानों ने स्तोत्र को **पूजाकोटिसमं स्तोत्रं**-एक करोड़ बार पूजा करने से जो फल मिलता है, उतना एक बार स्तोत्र पाठ करने वाले व्यक्ति का चित्त भगवान् के गुणों में संलग्न हो जाता है, अतः स्तोत्र पाठ पूजा की अपेक्षा अधिक लाभप्रद है।

34. अध:पतन का कारण

शिष्यों ने गुरु से शिक्षा प्राप्त कर ली। एक दिन बाद उन्हें धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए गुरु के निर्देशानुसार अलग-अलग स्थान पर जाना था। अतः सभी शिष्य आपस में बैठकर चर्चा कर रहे थे कि हमें जनता को अध:पतन से बचाने और धर्म के सम्मुख करने के लिए क्या उपाय करना चाहिए ? तभी एक ने कहा-लोभ त्याग, दूसरे ने कहा- अहंकार का त्याग, तीसरे ने कहा-अहिंसा का पालन, चौथे ने कहा-काम वासना का त्याग। चर्चा में सभी के उत्तर भिन्न-भिन्न होने से शिष्य सन्तुष्ट नहीं हुए। वे गुरु के पास गए और विनम्रतापूर्वक अपनी समस्या उन्हें बतलाई।

गुरु ने उनसे पूछा - यह बताओ कि मेरा कमण्डलु किस पदार्थ से बना है? शिष्यों ने कहा -लकड़ी का कमण्डलु बना है। गुरु ने पुनः पूछा-यदि इसे नदी में डाल दें तो क्या होगा? उत्तर मिला-नदी में कमण्डलु तैरेगा। यदि कमण्डलु में एक छेद करके नदी में छोड़ दें तो क्या परिणाम होगा? गुरु ने प्रश्न किया। शिष्यों ने बतलाया - कमण्डलु नदी में डूब जायेगा। गुरुजी पुनः बोले - यदि मैं कमण्डलु में दायीं ओर छेद कर दूँ तो क्या होगा ? शिष्यों ने उत्तर दिया - आप कमण्डलु में किसी भी ओर छेद करें कमण्डलु नियम से डूबेगा ही।

गुरुजी ने शिष्यों को समझाया - शिष्यो! यह मानव-जीवन कमण्डलु के समान है। इसमें कोई भी दुर्गुण रूपी छिद्र होते ही पतन रूपी जल प्रवेश करके उसे पतित बना देता है। अतः मानव को अध:पतन से बचाने के लिए और धर्म सम्मुख करने के लिए उसके दुर्गुण रूपी छिद्र बन्द करना होंगे।

35. दया

एक दानी न्यायप्रिय राजा था। उसकी प्रजा उससे बहुत खुश थी। इन्द्र की सभा में उसकी दानशीलता की चर्चा होती रहती थी। इन्द्र उनकी परीक्षा लेने के लिए मौका देख रहे थे।

एक बार राजा शिकार खेलने गए, वहाँ उसने एक बूढ़े आदमी को देखा। बूढ़ा आदमी बहुत भूखा व गरीब था। राजा ने उसे बाबा कहकर आवाज दी और अपने साथ महल ले आये। वहाँ उसे खाना व हर सुविधा दी। उन्हें अपने पिता की तरह सम्मान दिया।

एक दिन वह फिर शिकार खेलने गए। आसमान में काले बादल घिर आये, सहसा तूफान आ गया। इन्द्र ने सोचा, अब उनकी परीक्षा लेनी चाहिए। राजा अब अपने साथियों से बिछुड़ गए थे। उस समय उनके पास एक आदमी आकर बोला – मैं अपने साथियों से बिछुड़ गया हूँ। आप तो हमारे दानशील महाराज हैं। कृपया मुझे कुछ धन दे दीजिए, जिससे मैं अपनी भूख शान्त कर सकूँ।

प्रजाप्रिय राजा अपनी मुसीबत का जिक्र न कर बोला, मैं तुम्हारी सहायता कर सकता हूँ लेकिन इसके लिए मुझे एक पत्थर की जरूरत है। उस व्यक्ति ने पत्थर उठाकर राजा को दिया।

अपने साथियों से बिछुड़ा असहाय राजा जैसे ही पत्थर से अपना सोने का दाँत तोड़ने लगा उसी क्षण आकाशवाणी हुई, हे दानप्रिय राजन्! रुक जाओ। देवताओं ने तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए यह सब नाटक रचा था। तुम अपनी परीक्षा में उत्तीर्ण हुए।

इन्द्र ने कहा – राजन् जो कुछ माँगना चाहो माँगो।

राजा ने कहा – मैं इतना माँगता हूँ कि मेरी प्रजा सुखी रहे।

36. मुनि सेवा

एक समय श्री धर्मघोष मुनिराज चम्पानगरी में आहार करके तपोवन की ओर जा रहे थे। चलने के अधिक परिश्रम से वे अत्यधिक थक गए। तब एक वृक्ष के नीचे बैठ गए। उस समय वे प्यास की बाधा से व्याकुल हो रहे थे, उन्हें प्यासा देखकर गंगादेवी एक कलश में पवित्र जल लेकर आई और बोली – हे मुनिवर ! आप इस जल को पीकर प्यास शान्त कीजिए।

मुनिराज ने कहा – हे देवी तूने अपना कर्तव्य किया सो ठीक है,परन्तु हमारे लिए देवों द्वारा इस प्रकार असमय में दिया गया आहार-पानी लेना उचित नहीं है, यह सुनकर देवी चकित रह गई। उसी समय वह विदेहक्षेत्र में गई और वहाँ भगवान् के समवसरण में नमस्कार कर प्रश्न किया कि हे भगवन्! एक प्यासे मुनि को मैं जल पिलाने गई थी, परन्तु उन्होंने वह जल नहीं पिया सो इसका क्या कारण है ? दिव्यध्वनि में उत्तर मिला कि मुनि लोग शुद्ध श्रावक के यहाँ दिन में एक बार ही खड़े-खड़े आहार लेते हैं, देवों से आहार नहीं लेते।

देवी यह उत्तर पाकर निरुपाय हो सोचने लगी कि हमें कुछ तो वैयावृत्य करके इनकी प्यास को शान्त करना चाहिए। उसने वहाँ से आकर मुनि के चारों तरफ सुगंधित ठंडे जल की वर्षा शुरू कर दी। जिससे ठंडी-ठंडी हवा लगकर मुनिवर को एकदम शान्ति हो गई, इसके बाद वे मुनिराज शुक्लध्यान में आरुढ़ हो घातिया कर्म का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त कर केवली हो गए। स्वर्गों से देवों ने आकर उनकी पूजा की, गंधकुटी की रचना हुई, सभी ने जैनधर्म का उपदेश सुना।

37. जिनेन्द्र भक्ति-कामधेनु है

आर्यखण्ड में कुन्तल देश के तेरपुर नगर में राजा नील और महानील हुए। वहीं एक सेठ वसुमित्र, उनकी पत्नी वसुमती थी। उनका एक गोपाल था धनदत्त। उसने एक बार जंगल में भ्रमण करते हुए तालाब में हजार पत्तों वाला एक सहस्र कमल देखा और उसे तोड़ लिया। तभी एक नाग कन्या प्रकट हुई, उसने गोपाल को कहा – जो सर्वश्रेष्ठ हो, तुम इस कमल को उन्हें सौंप देना।

उसके अनुसार वह कमल लिए हुए अपने घर आया और सेठ को सारी बात बतायी। उसने राजा को कहा। राजा, गोपाल और सेठ सहस्रकूट जिनालय गए। वहाँ जिनेन्द्र भगवान् की वन्दना कर सुगुप्ति मुनि को प्रणाम किया। फिर मुनिराज से राजा ने पूछा – भगवन्! सर्वोत्कृष्ट कौन है? मुनिराज ने कहा – जिनेन्द्र भगवान्। यह सुनकर गोपाल ने जिनेन्द्र प्रभु के समक्ष खड़े होकर कहा हे सर्वोष्कृष्ट! इस कमल को ग्रहण करो और देव के ऊपर रखकर चला गया।

''एक ग्वाला जो विवेक रहित, मलिन और अशुचि था। वह करकण्डु नाम का गुणवान राजा हुआ, वह राजा एक फूल से संसार का हरण करने वाले जिनेन्द्र भगवान् की पूजा कर इच्छित फल को प्राप्त हुआ। इसलिए हमेशा हम लोगों को जिनेन्द्र भगवान् की अर्चना पूजा करनी चाहिए।''

अकेली जिनभक्ति ही दुर्गति का नाश करने में समर्थ है। इससे विपुल पुण्य की प्राप्ति होती है और जब तक सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती तब तक यह भक्ति परम्परा से सभी सुखों को देने वाली होती है।

38. हिंसा से डर

राबिया नाम की एक संत सबको दिल से प्यार करती थी। उसके घर का दरवाजा सभी के लिए खुला रहता था। एक बार राबिया जंगल में घूमने गई। वह बड़े प्रेम से जंगल के पशु-पक्षियों को देख रही थी तभी बहुत सारे पशु-पक्षी उसके चारों ओर घूमने लगे। कुछ उसके शरीर से चिपटे, कोई गोदी में बैठे थे तो कोई सिर पर बैठे थे।

उसी समय हसन बसही नामक संत भी वहाँ आ पहुँचा। उसे यह सब देख बहुत अच्छा लगा। लेकिन जैसे ही वह राबिया के पास पहुँचा सारे पशु-पक्षी वहाँ से भाग गए। यह देख उसने निराशा के साथ राबिया से पूछा-''राबिया! यह क्या है कि इतने जानवर तुम्हारे पास कितनी प्रसन्नता और आनन्द से खेल रहे थे, तुम्हें घेरे हुए थे और मेरे आते ही सभी चले गए। जैसे- मैं कोई संसारी आदमी हूँ।''

राबिया ने पूछा- ''आप क्या खाते हैं ?'' संत ने कहा - ''उससे तुम्हें क्या मतलब है।'' राबिया बोली- ''मुझे कुछ मतलब है तभी तो पूछ रही हूँ।'' संत बोला- ''मैं गोश्त खाता हूँ।'' राबिया ने हँसकर कहा- ''गोश्त खाते हैं और चाहते हैं कि पशु-पक्षी तुम्हारे पास आएँ। यह कैसे हो सकता है ? जिन्हें तुम मारते हो वे तुमसे डरें नहीं, भागें नहीं। जल्लाद से कौन नहीं डरता।'' हसन की आँखें खुल गयीं और उसने उसी क्षण माँस खाने का त्याग कर दिया।

शिक्षा : हिंसक प्राणियों से सभी डरते हैं, इसलिए कभी किसी की हिंसा नहीं करनी चाहिए।

39. अनोखा वैरागी

पोदनपुर के राजा विद्युतराज और उनकी रानी विमलमति का पुत्र विद्युत्पथ किसी कारण अपने बड़े भाई से कुपित/नाराज होकर पाँच सौ योद्धाओं के साथ नगर से बाहर निकल गया और अपना विद्युतचोर नाम रखा। चोर शास्त्र के उपदेश से वह मंत्र-तंत्र के विधान सीख गया। अतः शरीर को अदृश्य बनाना तथा बन्द किवाड़ों का खोलना आदि का अच्छा जानकार हो गया था।

जिस समय जम्बूकुमार अपनी नवविवाहित स्त्रियों के साथ बैठा था, उसी समय वह विद्युतचोर उस घर में रत्न तथा धन आदि चुराने के निमित्त घुसा। उस समय जम्बूकुमार की माता जिनदासी जाग रही थी। उसे जागृत देख विद्युतचोर ने पूछा माँ तू इस तरह क्यों जाग रही है ? तब वह बोली मेरा एक ही बेटा है, वह प्रातःकाल दीक्षा ले लेगा। ऐसा संकल्प करके बैठा है। इसी कारण शोक से युक्त हो, मैं जाग रही हूँ। तुम बुद्धिमान दिखाई देते हो, यदि तुम उसे उपायों के द्वारा इस हठ से निवृत्त कर सको तो मैं तुम्हें मन चाहा धन दे दूँगी।

माता की बात सुन विद्युतचोर जम्बूकुमार के पास पहुँचता है तथा आठ कथाओं के माध्यम से उसे विषय भोगों को ग्रहण करने के लिए आग्रह करता है, किन्तु जम्बूकुमार भी उसे प्रति उत्तर रूप कहानी के माध्यम से संसार की नश्वरता का बोध कराते हैं। जम्बूकुमार के वचन सुन उसकी माता, चारों कन्याएँ और चोर संसार, शरीर तथा भोगों से अत्यन्त वैराग्य को प्राप्त हो जाते हैं तथा जम्बूस्वामी, विद्युतचोर एवं उसके 500 साथी सभी सुधर्म गणधर के समक्ष समर्पित होकर संयम ग्रहण कर लेते हैं।

40. नैतिक आदर्श

प्राचीन भारत के एक चिकित्सक अपने शिष्यों के साथ औषधियों की खोज में निकले। रास्ते में उन्हें एक विचित्र प्रकार का फूल दिखायी दिया। शोध कार्य करने के लिये उसे तोड़ना ही चाहते थे किन्तु वह खेत की मेड़ पर जाकर एकाएक रुक गए।

यह देखकर उनके शिष्य ने पूछा–उस फूल को तोड़ने में क्या कठिनाई है ? मैं अभी तोड़कर लाता हूँ। चिकित्सक बोले– नहीं हमें खेत के मालिक से पूछे बिना उस फूल को नहीं तोड़ना चाहिए।

शिष्य ने कहा – पर आपको तो राजाज्ञा मिली हुई है कि आप कहीं से कोई भी वनस्पति तोड़ सकते हैं, फिर खेत के मालिक से पूछने की क्या आवश्यकता है ?

चिकित्सक बोले – राजाज्ञा तो मिली हुई है किन्तु राजाज्ञा के आधार पर खेत के मालिक की उपेक्षा की गई तो फिर नैतिक आदर्श कहाँ रहेगा ?

यह कहकर चिकित्सक कई मील पैदल चलकर खेत के मालिक के पास पहुँचे और उससे पूछ लेने के बाद ही उन्होंने वह फूल तोड़ा।

41. अतिथि देवो भव

विनोबा भावे बच्चे थे, तब उनके पड़ोस में रहने वाली एक महिला तीर्थयात्रा के लिए गई। विनोबा की माता से पड़ोसन का बहुत प्रेम था, अतः अपने बच्चे को वे विनोबा के घर ही छोड़ गई। विनोबा की माँ ने पड़ोसन के बच्चे को अत्यन्त स्नेहपूर्वक अपने घर रखा, कुछ दिनों में विनोबा ने महसूस किया कि उनकी माँ पड़ोसन के बच्चे को घी से चुपड़ी रोटी देती है और उसे सादी रोटी, दूसरे मामले में भी वह उस बच्चे पर ज्यादा ध्यान देती है, यह देखकर विनोबा से रहा नहीं गया और एक दिन उसने अपनी माँ से इस भेद-भाव का कारण पूछा तो माँ ने अत्यन्त स्नेह से उन्हें दुलारते हुए समझाया बेटा - ''पड़ोसन का बेटा तो भगवान् का बेटा है और तू मेरा बेटा है, तुमने तो मेरे पेट से जन्म लिया है।'' लेकिन उसे तो भगवान् ने कृपा कर कुछ दिनों के लिए हमारे पास रहने का मौका दिया है, इसलिए तेरी अपेक्षा उसका दर्जा बड़ा है, अपनी माँ से प्राप्त ऐसे ही संस्कारों ने विनोबा को महान् बनाया।

- जो पुरुष सम्पत्तिशाली होते हुए भी अतिथि का आदर-सत्कार नहीं करता, वह मनुष्य नितान्त दरिद्र है।

  -कुरल काव्य

- मोक्षमार्ग की साधना में लगने वाले अतिथि कहलाते हैं। अतिथियों के सम्पादक अतिथि हुआ करते हैं, जिस तिथि में 'अतिथि'आ जाते हैं, वह पुण्यतिथि (शुभ) मानी जाती है।

  - आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज (परमार्थ देशना)

42. राजा का त्याग

भारतीय वसुंधरा पर भोगों को त्याग कर योगी बनने की कहानी जितनी सुंदर है, उतनी ही महान् गौरव गाथा रण-बांकुरों वीर सपूतों के त्याग की कहानी भी है।

एक राजा जिसका राज्य छिन गया है, जो अब भिखारी के वेष में दर-दर की ठोकरें खाते हुए अपने ही राज्य के एक गाँव में पहुँचा। गाँव का हाल देखकर राजा हैरान हुआ, चारों ओर भुखमरी, बीमारी, चेहरों पर हताशा, इससे भी अधिक हैरानी राजा को ये हुई कि एक भी जवान आदमी गाँव में नहीं दिखा, सभी बूढ़े आदमी और बेवा स्त्रियाँ ही नजर आयीं।

राजा से न रहा गया और एक दादाजी से पूछ ही लिया कि ‘‘क्या इस गाँव में एक भी जवान बालक नहीं है।’’ इतना सुनते ही दादाजी बोले-‘‘तुम्हें नहीं मालूम मुसाफिर हमारे राज्य पर किसी बड़े राजा ने आक्रमण किया, चारों ओर देशभक्ति की लहर दौड़ गई और सभी वीर युवक रणभूमि में वीरगति को प्राप्त हुए।’’ राजा ने फिर पूछा-‘‘क्या कोई भी नहीं बचा’’। वृद्ध कहने लगा-‘‘राहगीर जन्मभूमि की प्रतिष्ठा में ही हम सबकी प्रतिष्ठा छिपी है, जिसकी धूल में लेटकर हम बड़े हुये हैं, जिसने हमें पीने को पानी और खाने को अन्न के साथ-साथ सुंदर मधुर फल दिये, उसकी सेवा और रक्षा से विमुख होना कृतघ्नता है।

हे मुसाफिर! माता और मातृभूमि के ऋण से मानव कभी उऋण नहीं हो सकता, इसलिए जन्मभूमि की रक्षा के लिये हमारे देश के लोगों ने अपने प्राणों का भी त्याग कर दिया।’’

राजा की आँखों में आँसुओं का सागर तैरने लगा, वह विचार करने लगा–मुझे जिंदा या मुर्दा उपस्थित करने वाले को मिथला नरेश ने एक हजार स्वर्ण मुद्रायें देने की घोषणा कर रखी है, क्यों न इन असहायों को लेकर मैं स्वयं हाजिर हो जाऊँ और पुरुस्कार इन ग्रामीणों को दिलवा दूं, ताकि ये सुखी जीवन जी सकें।

दूसरे दिन राजा मिथलेश के सामने था, मिथलेश सकते में आ गया । जिसे मैं खोज रहा हूँ वह स्वयं मौत के मुँह में आ रहा है। मिथलेश अभी कौशल नरेश को देख ही रहा था कि कौशलेश बोला–''हे मिथलेश! तुम्हें मेरा राज्य प्रिय था, वह तुम मुझसे छीन ही चुके हो, अब मेरी जान चाहते हो तो मैं हाजिर हूँ; लेकिन जो पुरुस्कार आपने मेरे ऊपर घोषित किया है, वह पुरुस्कार इन मेरे देशवासियों को दिया जाये, ताकि ये अपना दुःख दूर कर सकें।''

इतना सुनते ही ग्रामीण बुजुर्ग तो रोने ही लगे। पर मिथलेश भी राज्य सिंहासन पर बैठा न रह सका, ऐसा अभूतपूर्व प्रजा–प्रेम देखकर वह सिंहासन से नीचे उतर कर कौशल नरेश के गले लिपट गया और गद्–गद् कंठ से बोला–मुझे क्षमा करो राजन् और अपनी प्रजा का पालन करो, मैं तुम्हारा राज्य वापस करता हूँ। जिस देश का राजा अपनी प्रजा के कल्याण में अपना कल्याण समझता है, जो प्रजा के दुःख–दर्द में साथ रहता है वही सच्चा शासक है।

राजा प्रजा–प्रेम के कारण अपने प्राणों को भी त्यागने पर उतारू हो गया तो वह अपना खोया राज्य पा गया। इसी प्रकार यदि हम विषय–वासनाओं, कामनाओं, आकांक्षाओं का त्यागकर सकें तो अपनी आत्मा की भगवत्ता प्रकट कर सकते हैं।

43. धर्म रहित जीवन के परिणाम

रानी अपने राजा से बार–बार कहती थी कि धर्म करो नहीं तो मरकर के ऊँट बनोगे। राजा नहीं माना कुछ समय बाद दोनों का मरण हो गया। रानी बादशाह की बेटी हुई और राजा उस बादशाह की पशुशाला में ऊँट हुआ। बेटी का विवाह हुआ तो बादशाह ने बहुत सारा सामान देकर विदा किया तथा साथ में वह ऊँट भी दिया ऊँट पर बेटी का सामान पेटी आदि रखी थी। ऊँट को जातिस्मरण हुआ कि जिसका सामान मेरे ऊपर लदा है, वह पूर्व भव की मेरी स्त्री है। वह वहीं रुक गया और आगे न बढ़ा। सभी सोचते क्या कारण है ? उसी समय बादशाह की बेटी को भी जातिस्मरण हो गया। ये पूर्वभव में मेरे पति थे। इससे ये मेरा सामान ले जाने में संकोच कर रहे हैं। वह बेटी ऊँट के कान में जाकर कहती है। सुनो पूर्व भव में मैं कहती थी, धर्म करो नहीं तो ऊँट बनोगे। आपने मेरी बात नहीं मानी, अब मैं किस मुख से सबके सामने कहूँ कि मेरे पति पर सामान न लादो। भलाई इसी में है कि लदे चलो। वह ऊँट अब चलने लगा।

- धर्म से मनुष्य को मोक्ष मिलता है और उससे स्वर्ग की भी प्राप्ति होती है, फिर भला धर्म से बढ़कर लाभदायक वस्तु और क्या है ?
- केवल धर्म जनित सुख ही वास्तविक सुख है, शेष सब तो पीड़ा और लज्जा मात्र है।

– कुरलकाव्य

44. गुरु भक्ति

बनारस में एक गुरुजी के पास बहुत से विद्यार्थी पढ़ते थे, एक विद्यार्थी पर गुरु की विशेष कृपा थी। गुरु की पत्नि ने गुरुजी से एक दिन पूछा कि – आप इन सभी विद्यार्थियों में से इस विद्यार्थी पर क्यों इतनी अधिक दृष्टि रखते हो ? गुरुजी ने कहा – समय आने पर बता देंगे। एक दिन गुरुजी ने एक छोटा–सा पका आम कपड़े में बाँध लिया और सबसे यह कह दिया कि हमारे हाथ में एक बड़ा भारी फोड़ा हो गया है। इसका इलाज वैद्य ने बताया है कि कोई इसे मुख से चूस ले तो इसका सारा खून मवाद साफ हो जाएगा। यदि इसका उपचार नहीं किया तो यह और भी बढ़ जाएगा। गुरुजी की यह बात सुनकर सब विद्यार्थी पीछे हट गए, किन्तु वह विद्यार्थी, जिस पर गुरु की विशेष कृपा थी वह उठा और फोड़े को मुख से चूस लिया। क्या था? था तो आम परन्तु उन बालकों में से एक की परीक्षा लेने की बात थी। इस प्रकार वह शिष्य परीक्षा में पास हो गया, यह दृश्य देखकर गुरुजी की पत्नी ने समझ लिया कि वास्तव में उस विद्यार्थी के प्रति गुरु जी की विशेष कृपा क्यों है ?

- गुरुवचन आपत्तियों में भी पथ प्रदर्शित करते हैं।
- गुरुवचन जिनशासन में उपकरण माने गये हैं।
- गुरु के अभाव में गुरु के पदचिह्न ही हमारे लिए दर्पण का काम करते हैं।

– आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज

(सागर बूँद समाय)

45. क्रोध चाण्डाल है

पण्डितजी धर्म सभा में उपदेश दे रहे थे और कह रहे थे क्रोध चाण्डाल के समान है। अतः नहीं करना चाहिए। उसी सभा में एक जाति का चाण्डाल भी बैठा उपदेश सुन रहा था। जैसे ही पण्डित जी का उपदेश समाप्त हुआ और पण्डितजी सभा से निकलकर भोजन करने जाने लगे तो तभी उस चाण्डाल ने पण्डितजी के चरण स्पर्श कर लिए। अब क्या था ? पण्डितजी जोर से बोले, क्यों रे चाण्डाल तूने मुझे छू लिया, मैं भोजन करने जा रहा था। पण्डितजी कहते अब मैं गङ्गाजी से स्नान करके आता हूँ तब भोजन करूँगा। पण्डितजी गङ्गा स्नान करने जा रहे थे तभी देखा कि आगे-आगे वह चाण्डाल भी जा रहा था। पण्डितजी फिर जोर से बोले अरे चाण्डाल अब तू कहाँ जा रहा है ? चाण्डाल कहता है - मैं गङ्गा स्नान करने जा रहा हूँ क्योंकि मैंने चाण्डाल को छू लिया है। अरे तू तो स्वयं चाण्डाल है। चाण्डाल बोला - आप ही तो कह रहे थे कि क्रोध चाण्डाल है। अतः मैंने आपको छुआ तो आपको क्रोध आ गया, अतः मैंने क्रोध रूपी चाण्डाल को अर्थात् आपका स्पर्श किया है, इससे गङ्गाजी स्नान करने जा रहा हूँ। यह सुनते ही पण्डितजी का चेहरा उतर गया और अपनी गलती का अनुभव हो गया।

- क्रोध मानव का स्वभाव ऐसे तिनके के समान होता है, जिसे क्रोध की आँधी कभी भी उड़ा ले जा सकती है।

–शेक्सपीयर

46. प्यार की शक्ति

जापान में एक बहुत बड़े आदमी हुए, उनका नाम था कागावा। लोग उन्हें ''जापान का गाँधी'' कहा करते थे। वास्तव में वे भी गाँधीजी की तरह एक मामूली-सी बस्ती में बड़ी सादगी से रहते थे और सबको प्यार करते थे।

उसी बस्ती में एक शैतान आदमी रहता था। वह किसी के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करता था। उसे सब बुरा कहते थे। जब उसने देखा कि चारों ओर कागावा की प्रशंसा होती है और लोग उसे पूजते हैं तो उसके मन में बड़ी ईर्ष्या पैदा हुई और वह कागावा का अहित करने की सोचने लगा। सोचते-सोचते उसने तय किया कि इसका वध कर दो न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। वह उसके यहाँ रात्रि में पहुँचा। उसकी आँखें लाल-लाल थीं और हाथ में तलवार थी। कागावा ने देखा तो वह समझ गया मुझे मारने आया है, किन्तु कागावा के चेहरे पर शिकन भी नहीं आई। वह ईश्वर से प्रार्थना करने लगा कि ईश्वर इसे सद्बुद्धि दे और इसका कल्याण करें। उस आदमी को आश्चर्य हुआ जिसे हम मारने आए वह मेरे भले के लिए ईश्वर से प्रार्थना करने लगा। उनके चेहरे पर प्रेमभरी मुस्कराहट खेल रही थी।

वह कागावा के चरणों में फूट-फूट कर रोने लगा। कागावा ने बड़े प्यार से उसकी पीठ पर और सिर पर हाथ फेरा उसके आँसू पोंछे और कहा भाई कोई बात नहीं, भूल इंसान से ही होती है।

उस दिन के बाद उस आदमी ने कभी किसी की बुराई नहीं की। उसका सारा जीवन ही बदल गया।

47. सुखी होने का तरीका

एक सेठजी थे, उनने धन कमाया और उनके एक पड़ोसी का अवसान हो गया। धन कमाने वाले सेठजी विचार करते मैं भी एक दिन मृत्यु को प्राप्त हो जाऊँगा, मेरी सम्पत्ति यही छूट जाएगी। वह दुःख के कारण दुबला-पतला हो गया। एक दिन एक साधुजी मिले। वह साधुजी से प्रार्थना करने लगा, उसने अपनी घटना साधुजी को सुनाई। साधुजी कहते हैं -इसका तरीका बहुत सरल है। साधुजी ने कहा देखो मौत का विचार जब मन में आए तो जोर से कहो **जब तक मौत नहीं आवेगी, मैं अच्छी तरह से जीऊँगा।** ऐसा करने से उसका जीवन ही बदल गया।

दुबारा साधुजी आए तो वह चरणों में लौट गया। वह कहता साधुजी आपने बहुत अच्छा उपाय बताया मैं तो सुखी हो गया।

48. गङ्गा बनी सिन्धु

एक व्यक्ति गङ्गा के तट पर खड़ा होकर गङ्गा से कहता है कि कहाँ दौड़े जा रही हो ? लहरों ने मौन उत्तर दिया। वहाँ जा रही हूँ जहाँ मुझे शरण मिलेगी। पहाड़ों पर शरण नहीं मिली, गड्ढों में नहीं मिली, मरुस्थल पर भी नहीं मिली, जहाँ सीमा है वहाँ शरण मिल नहीं सकती। धीरे-धीरे गङ्गा पहुँच गई सागर के पास। जहाँ बिन्दु-बिन्दु भी सिन्धु बन गई। इसलिए पूजा करो तो पूर्ण की। लोक में विख्यात है कि सुखी की शरण में जाओगे तो सुखी होओगे। गङ्गा सिन्धु के पास पहुँचकर स्वयं भी सिन्धु बन गई। इसलिए अगर अर्हन्त भक्ति करोगे तो एक दिन अरिहन्त बन जाओगे।

49. गृहस्थ बनूँ या साधु

एक भाई कबीरदासजी के पास जाते हैं और उनसे प्रश्न करते हैं कि – मैं गृहस्थ बनूँ या साधु। यह सुनकर कबीरदास ने अपनी पत्नी से कहा – दीपक जलाकर ले आओ। वह लेकर आ गई। कबीरदास प्रश्न पूछने वाले को लेकर वृद्ध साधु के पास गए। बाबाजी आप नीचे आइए मुझे आपके दर्शन करना है। साधुजी ऊपर से नीचे आए और दर्शन देकर चले गए। ऊपर पहुँचे ही थे कि कबीरदासजी ने पुनः पुकारा साधुजी एक प्रश्न है कृपया नीचे आइए, वह नीचे आए और पूछा क्या प्रश्न है? कबीरदासजी कहते हैं – मैं भूल गया हूँ। साधुजी मुस्कराहट पूर्वक बोले कोई बात नहीं है, याद कर लो। पुनः साधुजी ऊपर चले गए। कबीरदासजी ने ऐसा अनेक बार किया। वे साधुजी अनेक बार आए–गए किन्तु उनके माथे पर शिकन तक नहीं आई।

तब कबीरदासजी ने कहा– देखो यदि तुम इन साधु जैसी क्षमा रख सको तो साधु बन जाओ या मेरी पत्नी जैसी विनीत पत्नी मिल जाए जो दिन के उजाले में दीपक जलाने की कहने पर बिना तर्क किए कि दीपक की क्या आवश्यकता है, जलाकर ले आए तो गृहस्थ जीवन अच्छा है।

- जो गृहस्थ उसी तरह आचरण करता है, जिस तरह कि उसे करना चाहिए तो वह ‘मनुष्यों में देवता’ समझा जायेगा।
- गृहस्थाश्रम में रहने वाला मनुष्य अन्य तीनों आश्रमों का प्रमुख आश्रम है।

– कुरलकाव्य

50. राष्ट्र प्रेम

विवेकानन्दजी जब अमेरिका आदि देशों का भ्रमण कर भारत वापस होने लगे तो वहाँ के पत्रकारों ने उन्हें घेर लिया और पूछा हमारे यहाँ का यह सब राग, वैभव देखकर आपके मन में अपने देश के प्रति अब क्या विचार है ? विवेकानन्दजी का जवाब लाजवाब था। यहाँ का राग–वैभव देखने से पहले मैं अपने देश से प्यार करता था लेकिन यह सब देखने के बाद मैं अपने देश की पूजा करूँगा, क्योंकि भारत त्याग की मूर्ति है।

चाणक्य रात्रि में दीपक जलाकर लेखन कार्य कर रहे थे, तभी एक विदेशी राजदूत आया। उसने कुछ विशेष बात करने का निवेदन किया। चाणक्य ने वह दीपक बुझाकर दूसरा दीपक जलाकर बात प्रारम्भ की। जब राजदूत बात समाप्त कर जाने लगा तब उसने पूछा महात्मन्! एक बात बताइए कि आपने वह दीपक को बुझाकर दूसरा दीपक जलाकर बात करने का रहस्य मैं समझ नहीं पाया। चाणक्य ने कहा – उस समय मैं राजकीय कार्य कर रहा था, इससे राजकीय दीपक जल रहा था। आपको मुझसे व्यक्तिगत बात करनी थी। इसलिए मैंने वह दीपक बुझाकर यह दीपक जलाया। वह विदेशी राजदूत ऐसे देशभक्त, ईमानदार व्यक्ति के सामने नतमस्तक हो गया।

- जो व्यक्ति राजकीय नियमों का उल्लंघन करके कोई कार्य करता है तो समझिये कि वह अपनी तरफ से ही धार्मिक कार्यों में बाधा उपस्थित करता है।

– आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज

(सागर बूँद समाय)

51. सेवा से सुख

स्वामी विवेकानन्द के पास अनेक लोग अपनी समस्याओं के समाधान के लिए आते रहते थे। एक बार एक युवक ने उनसे आकर जिज्ञासा प्रकट की कि मैं अनेक स्थानों पर गया। अनेक महापुरुषों से मिला, मूर्ति पूजा भी की, मन को शून्य करने का प्रयास भी किया, घंटों कोठरी में बैठकर ध्यान किया लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ। अनेक उपाय किए पर शान्ति नहीं मिली। स्वामीजी ने स्नेह भरे शब्दों में कहा – सर्वप्रथम अपनी कोठरी का दरवाजा और खिड़कियाँ खुली रखो। अपने आस-पड़ौस के अभावग्रस्त दुःखी, रोगी और भूखे लोगों का पता लगाओ और उनकी यथाशक्ति सेवा करो। जो अनपढ़ व अज्ञानी हैं, उनको पढ़ाओ,समझाओ तुम्हें अवश्य ही शान्ति मिलेगी।

युवक ने कहा – अगर किसी रोगी की सेवा करने से मैं बीमार पड़ गया तो विवेकानन्द बोले तुम्हारे इसी सोच से प्रतीत होता है कि तुम हर एक अच्छे कार्य में बुराई खोजते हो। इसी कारण तुम्हें शान्ति नहीं मिलती। ''शुभ कार्य में देरी न करो और उसमें कमी मत खोजो''। यही शान्ति का मार्ग है।

ध्यान, तप, शील और ज्ञान युक्त साधु जितना आत्मलाभ प्राप्त करता है, उस प्रकार शान्ति चित्त का धारक साधारण व्यक्ति भी प्राप्त कर सकता है। मात्र मन में शान्ति हो तो सारा जगत् वश में दिखाई देता है।

- सेवा करके अहसान करना, सेवा के बदले में सेवा चाहना, अन्य किसी भी फल-कामना की पूर्ति चाहना तो प्रत्यक्ष ही सेवा धर्म से च्युत होना है।

52. उपदेश का प्रभाव

राजा शिकार का शौकीन था। एक दिन वह जूनागढ़ के जङ्गलों में शिकार खेलने निकला। एक झाड़ी में दो खरगोश दिखे, राजा ने एक गोली से दोनों को मार गिराया। मरे हुए खरगोशों को उठाया और राजमहल की ओर वापस होने लगे, किन्तु रास्ता भूल गए। चलते-चलते उन्हें एक कुटिया दिखाई दी, कुटिया में पहुँचे और मरे हुए खरगोशों को एक स्थान पर रख दिया तथा कुटिया में विराजमान साधु को प्रणाम किया। बोले महाराज मैं रास्ता भटक गया हूँ। कृपया मुझे जूनागढ़ का रास्ता बताइए। साधुजी ने कहा - मैं दो ही रास्ते जानता हूँ। एक है - दया का, जो स्वर्ग की ओर जाता है। और दूसरा - हिंसा का, जो नरक की ओर जाता है। दोनों में जो अच्छा लगे पकड़ लो।

राजा समझ गया कि मैंने निर्दोष खरगोशों की हत्या करके घोर पाप किया है, उन्होंने उसी समय से जीव हिंसा का त्याग कर दिया। तब साधुजी ने उन्हें जूनागढ़ का रास्ता बता दिया।

- जिसका उद्देश्य मात्र उपदेश देना ही है, इसलिए शास्त्र स्वाध्याय करता है तो वह सब्जी में पड़ी चम्मच के समान है, जो स्वयं कुछ भी स्वाद नहीं ले पाती।

  - आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज

- हम उपदेश सुनते हैं मन भर, देते हैं टन भर, ग्रहण करते हैं कण भर।

  - अल्जर

53. अन्याय के सामने मत झुको

लोकमान्य बाल गङ्गाधरजी तिलक बाल्यकाल से ही सच्चाई के प्रति समर्पित थे। वे अनुशासन का पालन करते थे। किसी की चुगली करना उनकी नीति के विरुद्ध था और इसी कारण वे अन्याय भी सहन नहीं करते थे। एक दिन उनकी कक्षा के कुछ विद्यार्थियों ने मूंगफली खाकर छिलके फर्श पर बिखेर दिए। अध्यापक ने पूछा कि– किसने ये छिलके यहाँ फैलाये हैं? तो किसी भी छात्र ने अपराध स्वीकार नहीं किया। इस पर अध्यापक ने सारी कक्षा को दण्डित करने का निश्चय किया। उन्होंने प्रत्येक छात्र के पास जाकर कहा हाथ आगे बढ़ाओ और हथेली पर तड़ातड़ बेत लगाए। जब तिलकजी की बारी आई तो उन्होंने हाथ आगे नहीं बढ़ाया और कहा – मैंने मूंगफली नहीं खाई है इसलिए मैं बेंत भी नहीं खाऊँगा तो अध्यापक ने कहा – फिर सच बताओ कि मूंगफली किसने खाई थी ? मैं किसी का नाम बताकर चुगली भी नहीं करूँगा और बेंत भी नहीं खाऊँगा। तिलकजी के इस उत्तर के कारण उन्हें स्कूल से निकाल दिया गया, परन्तु उन्होंने बिना अपराध दण्ड स्वीकार नहीं किया। अन्याय का विरोध करने में तिलकजी आजीवन जुटे रहे।

प्रेमचन्द्र जी ने भी कहा है कि – जो अन्याय के सामने छाती खोलकर खड़ा हो जाए, वही सच्चा वीर है।

- न्यायपूर्वक काम करने वाले के चित्त में शान्ति और अन्याय पूर्वक काम करने वाले के चित्त में अशान्ति रहती है।

–अज्ञात

54. बादशाह का आदेश

ईरान के बादशाह एक जानलेवा बीमारी से ग्रस्त हो गए। हकीमों ने शारीरिक जाँच के बाद कहा कि – यदि अमुक लक्षणों वाले किसी जवान व्यक्ति का पित्ताशय मिल जाए तो बादशाह के प्राण बचाए जा सकते हैं।

राज्य के कर्मचारी ऐसे व्यक्ति की तलाश में निकल पड़े उन्हें उन लक्षणों वाला एक युवक मिला। उसका पिता अत्यन्त गरीब था। उसने धन के लिए पुत्र को दान कर दिया। उधर ईरान के काजी ने भी फतवा दे दिया कि बादशाह का जीवन बचाने के लिए एक व्यक्ति के प्राण लेना गुनाह नहीं है।

जल्लाद की तलवार देखते ही युवक आकाश की ओर देखकर कुछ बुदबुदाया। बादशाह ने पूछा – बेटे तुम आकाश की ओर क्या इशारा कर रहे थे ? युवक ने कहा – मैं अपने साथ होने वाले गुनाहों की जानकारी खुदा को दे रहा था। मैं कह रहा था कि – हे खुदा मैं अपना जीवन तुझे सौंप रहा हूँ।

तत्काल बादशाह की आँखें खुल गई। बादशाह ने कहा – छोड़ दो इस युवक को। मुझे किसी के प्राण लेकर अपना जीवन बचाने का हक नहीं है।

- जीवन एक बाजी के समान है। हार–जीत तो हमारे हाथ नहीं है, पर बाजी का खेलना हमारे हाथ में है।

– जर्मी टेलर

55. दुर्जन संगति का प्रभाव

मगध देश के पाटलिपुत्र नगर में पिछली गली के एक छिद्र से निकल कर कौशिक (उल्लू) एक बार गंगा में गया, वहाँ एक वृद्ध हंस ने उल्लू का स्वागत किया और पूछा तुम कौन हो ? उल्लू ने कहा – मैं पक्षीराज हूँ। सभी राजा मेरी आज्ञा से चलते हैं। हंस ने इसलिए उल्लू से मित्रता कर ली और उल्लू के साथ गली में आ गया। प्रभात बेला में राजा प्रजापाल विजय यात्रा को चले। उल्लू ने उन्हें देखकर हंस से कहा –

देखो यह राजा मेरे वचनों से चलेगा मेरे वचनों से ही रुकेगा। इस प्रकार उल्लू ने विशेष शब्द करना प्रारम्भ किया, जिससे राजा आगे बढ़ जाता पुनः विकृत शब्द करके राजा को रोक देता। इस प्रकार बहुत बार शकुन–अपशकुन के शब्दों को सुनकर राजा चल देता और रुक जाता। तब राजा ने क्रोध से शब्द की ओर घूक के लिए बाण छोड़ा। यह देखकर उल्लू तो बिल में घुस गया और द्वार पर खड़ा हंस मारा गया। इसलिए ठीक ही कहा – ''अकाल में चर्या, दुर्जन के साथ संगोष्ठी और कुमित्र की सेवा कभी नहीं करनी चाहिए देखो! पद्‌म वन में अण्डे से उत्पन्न (हंस) धनुष से छूटे हुए बाण से नष्ट हो गया।''

शिक्षा : महान् तपस्वी भी दुर्जन के दोषों से अनर्थ में पड़ जाते हैं अर्थात् दोष तो दुर्जन करता है, परन्तु फल सज्जन को भोगना पड़ता है, जैसे – उल्लू के दोष से निष्पाप हंस पक्षी मारा गया।

56. देशभक्ति

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पण्डित जवाहरलाल नेहरु को स्वतंत्रता संग्राम के दौरान देहरादून, बरेली, नैनी आदि जेलों में रखा गया। इन्हीं जेल यात्राओं के दौरान उनकी पत्नी कमला नेहरु गम्भीर रूप से बीमार पड़ गईं। टी. बी. रोग से पीड़ित कमला नेहरु को भुवाली सैनिटोरियम में भर्ती कर दिया गया लेकिन जब कोई सफलता नहीं मिली तो डॉक्टरों ने उन्हें इलाज के लिए स्विटजरलैण्ड ले जाने की सलाह दी। जेल में बंद जवाहरलाल नेहरु चाहते थे कि स्वयं अपनी देखरेख में उनका इलाज करा सकें। अनेक लोगों ने ब्रिटिश सरकार से जवाहरलाल नेहरु को जेल से रिहा करने का अनुरोध किया। इसके लिए ब्रिटिश सरकार ने शर्त रखी कि जवाहरलाल नेहरु स्वयं पैरोल के लिए प्रार्थना पत्र दें व इस दौरान राजनीतिक गतिविधियों से भी अपने को अलग रखने का वचन दें तो उन्हें रिहा कर दिया जाएगा। कमला नेहरु को जब यह पता चला तो उन्होंने स्पष्ट शब्दों में नेहरुजी से कहा कि – वे देश के आत्मसम्मान के विरुद्ध किसी भी शर्त को न मानें, क्योंकि देश मेरे प्राणों से अधिक मूल्यवान है। नेहरु जी की दुविधा समाप्त हो गई और उन्होंने पैरोल का प्रार्थना पत्र देने से इंकार कर दिया। अंततः कमला नेहरु ने स्विटजरलैण्ड के एक अस्पताल में दम तोड़ दिया। जवाहरलाल नेहरु उस समय भी जेल की कोठरी में ही बंद थे।

- उन्नत भारत के लिए उन्नत भावना को संस्कारित करने की आवश्यकता है।

– आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज

57. द्वीपायन मुनि

द्वीपायन रत्नत्रयधारी एक मुनि थे। वे महान् तपस्वी थे। वे चाहते तो उनकी तपस्या का फल मीठा भी हो सकता था, किन्तु वे द्वारिका को जलाने में निमित्त बन गये।

दिव्यध्वनि के माध्यम से जब इन्हें ज्ञात हुआ कि मेरे निमित्त से बारह वर्ष के बाद द्वारिका जल जायेगी, तो यह सोचकर वे द्वारिका से दूर चले गये कि बारह वर्ष के पूर्व नहीं लौटेंगे। समय बीतता गया और 12 वर्ष बीत गये होंगे, ऐसा सोचकर वे विहार करते हुए द्वारिका के समीप आकर एक बगीचे में पहुँचे, जहाँ वे ध्यानमग्न हो गए।

यादव वहाँ आये। द्वारिका के बाहर फेंकी गयी शराब को उन्होंने पानी समझा और पी गये। मदिरापान का परिणाम यह हुआ कि यादव नशे में होश खो बैठे। पागलों की तरह वे वहाँ पहुँचे, जहाँ द्वीपायन मुनि ध्यानस्थ थे। मुनि को देखकर यादव उन्हें गालियाँ देने लगे। इतना होने पर भी मुनि ध्यानस्थ रहे, किन्तु जब यादव नशे में चूर होकर मुनि को पत्थर मारने की क्रिया बहुत देर तक करते रहे, तब द्वीपायन का मन अपमान सहन नहीं कर सका। मन को ठेस पहुँची और मान जागृत हुआ, इसके लिए क्रोध जागा और उसके फलस्वरूप तैजसऋद्धि का उदय हुआ जिसके प्रभाव से द्वारिका जलकर राख हो गयी।

मान–सम्मान की आकांक्षा पूरी न होने पर क्रोध उत्पन्न हो जाता है, जिस क्रोधाग्नि के भड़कने से बड़ी–बड़ी हानियाँ हो जाती हैं। अतः मार्दव धर्म धारण करें।

58. एकाग्रता तथा कुशलता

एक निर्धन बालक लकड़ी का गट्ठा लेकर बाजार में बेचने जा रहा था। उस बालक के गट्ठा बाँधने की कला को देखकर एक श्रीमानजी बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने बालक को अपने पास बुलाया और पूछा कि ऐसा सुन्दर गट्ठा किसने बाँधा है ? बालक ने कहा – मैं ही दिनभर लकड़ी काटता हूँ और मैं ही गट्ठा बाँधता हूँ। इसके बाद बाजार में बेचने जाता हूँ। उन श्रीमानजी को विश्वास नहीं हुआ और उनने पूछा तुम इसे खोलकर पुनः ऐसा ही बाँध सकते हो ? बालक ने कहा अवश्य ही। वह गट्टर खोलकर पुनः बड़ी लगन, ध्यान और कुशलता के साथ बाँधकर दिखा देता है। श्रीमानजी पर बालक की एकाग्रता, लगन और प्रतिभा का बहुत प्रभाव पड़ा। उनने बालक से कहा –तुम मेरे साथ चलो मैं तुम्हें अच्छी शिक्षा दिलाऊँगा। बालक ने भी हाँ कह दिया और साथ चल दिया। श्रीमानजी ने बालक के रहने, भोजन एवं शिक्षा का प्रबन्ध कराया और समय–समय पर स्वयं भी उसे पढ़ाने लगे। उस बालक ने अपनी लगन तथा कुशाग्र बुद्धि से उच्च शिक्षा प्राप्त की। वही बालक बड़ा होकर यूनान का दार्शनिक पाइथागोरस के नाम से प्रसिद्ध हुआ और वह श्रीमानजी जिनने इसकी बुद्धि, लगन, कला को एक दृष्टि में परखकर उसके अंदर छिपे हुए गुणों को पहचान कर पल्लवित किया था। वह यूनान के तत्त्वज्ञानी डेमोक्रीट्सजी थे।

जो व्यक्ति छोटे से छोटा कार्य भी लगन एवं ईमानदारी से करते हैं, वे ही महान् बनते हैं।

59. सदा नहीं रहते

एक व्यक्ति पर्चा बेच रहा था जिस पर लिखा था ''सदा न रहे'' उस पर्चे को एक उपकारी सेठ ने खरीद लिया।

उस सेठ से सभी लोग ईर्ष्या करते थे, इसलिए सेठ की शिकायत राजा से कर दी राजा ने उसे जेल में बन्द करवा दिया।

सेठजी बड़े दुःखी हो अपने दिन गुजार रहे थे कि एक दिन अचानक सेठजी का हाथ पगड़ी की गाँठ पर पड़ गया। उसने गाँठ को खोला तो उसमें से पर्चा निकला जिसे पढ़ते ही सेठजी की आँखें खुल गईं। उसने मन ही मन कहा – अरे दुःख किस बात का, जब सुख के दिन सदा न रहे तो दुःख के दिन भी सदा नहीं रहेंगे।

ऐसा विचार आते ही वह जोर से हँस पड़ा और बहुत देर तक हँसता रहा। चौकीदार ने सेठ को बहुत देर तक हँसता देखा तो सोचने लगा सेठ दुःख के कारण पागल हो गया। उसने राजा के पास जाकर सब समाचार कहा। राजा ने आकर सेठजी से कहा क्या बात है ? आप हँस क्यों रहे हो ? सेठजी ने कहा – राजन्! आदमी दुःखी क्यों हो ? सुख-दुःख के दिन तो सदा बदलते रहते हैं।

यह सुनकर राजा को बोध हो गया। उसने सेठजी को जेल से निकलवाकर उसके घर भिजवा दिया। सेठजी आनन्द से रहने लगे।

सच है नियति के चक्र में न सुख सदा रहता है न दुःख इसलिए बुद्धिमान न सुख में हर्ष मनाते हैं न दुःख में विषाद।

60. चार मूर्तियाँ

एक श्रेष्ठी जयपुर के मूर्ति बाजार में पहुँचा। वहाँ मूर्तिकार ने एक सी चार मूर्तियाँ दिखाई। जब श्रेष्ठी ने कीमत पूछी तो मूर्तिकार ने पहली मूर्ति की कीमत 50 रुपए, दूसरी की कीमत 500 रुपए, तीसरी की कीमत 5,000 रुपए एवं चौथी की कीमत 50,000 रुपए है। श्रेष्ठी अलग-अलग कीमत सुनकर आश्चर्य में पड़ गया। चारों मूर्तियाँ एक सी हैं, किन्तु कीमत में अन्तर क्यों ? तब मूर्तिकार ने एक तार लेकर प्रथम मूर्ति के कान में डाला किन्तु वह तार कान में गया ही नहीं। फिर दूसरी मूर्ति के कान में तार डाला तो वह दूसरे कान से निकल गया। पुनः तीसरी मूर्ति के कान में तार डाला तो वह मुख से निकल गया। अब चौथी मूर्ति के कान में तार डाला तो वह तार कहीं से बाहर नहीं निकला वह हृदय में समा गया। अब श्रेष्ठी उनकी अलग-अलग विशेषता समझ गया कि जिस मूर्ति के कान में तार गया ही नहीं अर्थात् वह उपदेश सुनता ही नहीं। दूसरी मूर्ति उपदेश सुनती तो है किन्तु दूसरे कान से बाहर निकाल देती है। तीसरी मूर्ति भी उपदेश सुनती है किन्तु बाद में वह मुख के द्वारा दूसरों को उपदेश सुना देती है। चौथी मूर्ति भी उपदेश सुनती है उपदेश सुनकर वह उसके बारे में चिन्तन भी करती है और उसे हृदय में धारण करती है। इसी कारण से चारों की कीमत में अन्तर है।

इसी प्रकार कुछ श्रोता तो उपदेश सुनते ही नहीं हैं, कुछ सुनते हैं और दूसरे कान से निकाल देते हैं। तीसरे कुछ सुनकर दूसरों को सुना देते हैं क्योंकि उससे सुनने वालों का कल्याण हो जाता है। लेकिन सबसे अच्छे चौथे प्रकार के हैं। जो उपदेश सुनकर अपने हृदय में धारण कर लेते हैं।

61. उपकार

एक महिला थी। उसकी आँखें चली गईं। पहले एक गई फिर दूसरी। बहुत परेशान रहने लगी। पति अपनी अंधी पत्नी का बोझ कब तक उठाता। वह उससे अलग रहने लगा और उसकी छोटी बेटी ने भी उससे मुँह मोड़ लिया।

महिला हर काम के लिए पराधीन हो गई थी। पर उसे कौन सहारा देता। ऐसी हालत में उसकी एक पुरानी सहेली उसके पास आकर रहने लगी। लेकिन उसका व्यवहार बड़ा अजीब था। वह महिला पानी माँगती तो एक बार पिला देती। दूसरी बार माँगने पर कह देती ''मैं तुम्हारी नौकरानी नहीं हूँ।'' उठो, घड़े से लेकर स्वयं पी लो। वह कपड़े माँगती तो एक बार दे देती, दूसरी बार माँगने पर कह देती ''अलमारी में रखे हैं। जाओ स्वयं ले लो।'' कभी उसका मन घूमने का होने पर एक बार साथ चली जाती। दूसरी बार जाने की बात आती तो कह देती ''मुझे काम है। तुम अकेली घूम आओ।''

महिला मन मसोसकर उठती और काम करती थी। असल में बात यह थी कि सहेली उसे कम प्यार नहीं करती थी। न काम से बचना चाहती थी। वह बार-बार दया दिखाकर उसको सदा के लिए अपाहिज नहीं बनाना चाहती थी। उसमें आत्म विश्वास पैदा कर देना चाहती थी। धीरे-धीरे वह महिला सब काम अपने आप करने लगी। उसे किसी के सहारे की जरूरत न रही। तब उसने समझा कि उसकी सहेली ने उसके साथ कितना उपकार किया।

वह अन्धों की एक संस्था में चली गई और वहाँ उसने न जाने कितने असहाय भाई-बहिनों को अपने पैरों पर खड़ा कर दिया।

62. समर्पण

एक गुरु–शिष्य यात्रा कर रहे थे। यात्रा करते–करते एक घने जङ्गल में किसी वृक्ष की छाया में विश्राम करने रुके। गुरुजी बैठे थे तथा युवा शिष्य शयन कर रहा था। तभी अचानक कहीं से भयानक विषधर सर्प निकल आया। गुरुजी ने उसे रोकना चाहा लेकिन सर्प न रुका। उसने कहा– तुम्हारा शिष्य मेरे पूर्व भव का बैरी है, मैं इसका रक्तपान करूँगा। गुरुजी ने पूछा – तुम इसे मारना चाहते हो या केवल रक्त से तृप्त हो जाओगे ? सर्प ने कहा – ''मुझे तो केवल इसका रक्त चाहिए।'' यह सुनकर गुरुजी ने अपने थैले से चाकू निकालकर शयन कर रहे शिष्य की त्वचा को छील दिया। शिष्य ने आँख खोलकर देखा और पुनः शयन करने लगा। गुरुजी ने खून निकाला और पत्तों के दोनों में भरकर सर्प को दे दिया। सर्प संतुष्ट होकर चला गया और बैर पूरा हो गया। इधर शिष्य फिर भी शयन कर रहा था। आखिर गुरुजी ने उसे उठाया और पूछा मैं तुम्हारे शरीर पर चाकू चला रहा था, तब तुम्हें मालूम पड़ा कि नहीं ? शिष्य ने कहा हाँ। गुरुजी ने पूछा – तुम्हें मुझ पर सन्देह नहीं हुआ, शिष्य बोला नहीं। गुरुजी ने फिर पूछा – तुम्हें भय नहीं लगा, तुम उठकर नहीं बैठे, मुझे रोका नहीं ? शिष्य ने उत्तर दिया – जब गुरु चरणों में ही जीवन ही समर्पित कर दिया तो दो बूँद खून से कैसा मोह! कैसा संशय।

शिक्षा : समर्पण का अर्थ होता है – कोरे कागज पर दस्तखत करना तो ऐसे शिष्य के समान ही सभी शिष्यों का समर्पण होना चाहिए।

63. फूलों पर शयन करने का फल

एक राजा हमेशा फूलों की शय्या पर सोता था। एक दिन शय्या बनाने वाली दासी (मालिन) ने सोचा इस शय्या पर सोने में कैसा लगता होगा, वह शय्या पर सो गई। लेटते ही उसकी नींद लग गई। तभी राजा आ गया। शय्या पर दासी को सोया देख उसने क्रोधित होकर दासी को कोड़े मारने की आज्ञा दे दी।

दासी को जैसे-जैसे कोड़े मारे जा रहे थे दासी खिलखिला कर हँसती जा रही थी। राजा ने दासी की हँसी को देख आश्चर्य-चकित हो उससे हँसने का कारण पूछा। दासी ने कहा-"मैं बिना मन के पाँच-दस मिनट शय्या पर सो गई, उसका फल इतने कोड़े की मार मिल रही है तो प्रसन्नता से हमेशा इस शय्या पर सोने वाले को कितनी मार पड़ेगी, कितना दुःख मिलेगा, कहा नहीं जा सकता है।" यह सुनकर राजा को अपनी गलती का अहसास हो गया। उसने उस दिन से फूलों की शय्या पर सोने का त्याग कर दिया।

शिक्षा : फूल आदि वनस्पतियों में भी जीव होते हैं, वे जीना चाहते हैं, सुख-दुःख का अनुभव करते हैं, इसलिए बिना प्रयोजन कभी फूल नहीं तोड़ना चाहिए।

- आत्म संयम से स्वर्ग प्राप्त होता है, किन्तु असंयत, इन्द्रिय-लिप्सा अपार अंधकारपूर्ण नरक के लिए खुला हुआ राजपथ है।
- आत्म संयम की रक्षा अपने खजाने के समान ही करो, क्योंकि उससे बढ़कर इस जीवन में और कोई निधि नहीं है।

-कुरल काव्य

64. बचपन का संस्कार

किसी शहर में एक माता और पुत्र रहते थे। पुत्र छोटा था, पिता की मृत्यु हो चुकी थी। अतः बच्चे के पालन-पोषण का भार माता पर ही आ गया। माता संस्कारहीन थी तथा उसमें सद्‌गुणों का अभाव था। बच्चे के भविष्य की चिन्ता उसे नहीं थी।

शैशव-अवस्था में एक दिन वह किसी लड़के की गेंद चुरा लाया। माँ ने उसकी एक छोटी-सी चीज पर नाराजी प्रकट नहीं की। बच्चे का उत्साह बढ़ गया और वह प्रतिदिन या जब भी मौका मिलता कुछ न कुछ किसी न किसी का उठा लाता। बिना मूल्य घर में चीज आना माँ के मन के लिए और भी खुशी का कारण बना।

धीरे-धीरे बालक युवा हुआ इतनी उम्र तक तो पक्का चोर भी बन गया, किन्तु पाप का घड़ा फूटे बिना रहता नहीं इस नियम के अनुसार एक बार चोरी के साथ-साथ किसी की हत्या भी कर देने के जुर्म में उसे फाँसी की सजा हो गयी। जिस दिन फाँसी दी जाने वाली थी, अधिकारियों ने उससे उसकी अंतिम इच्छा प्रकट करने को कहा -

युवक ने कहा- ''अपनी माँ से मिलना चाहता हूँ।''

माँ को कैदी के समीप लाया गया। पर उस कैदी और फाँसी पाने के लिए तैयार युवक ने क्या किया ? जानते हैं आप ? हाथ तो उसके हथकड़ियों में जकड़े हुए थे अतः माँ के मुँह पर थूँक दिया।

आसपास खड़े हुए व्यक्ति चकित हुए और इसका कारण पूछने लगे। युवक ने उत्तर दिया - मुझे इस स्थिति पर पहुँचाने वाली मेरी यह माँ ही है। अगर बचपन में चोरी करना आरम्भ करने पर यह मुझे प्रोत्साहन न देती और मना करती तो मैं आज फाँसी नहीं पाता। कहकर युवक ने मुँह मोड़ लिया।

65. मातृ गौरव

श्री आशुतोष मुखर्जी जब कलकत्ता हाईकोर्ट के जज और कलकत्ता विश्व विद्यालय के वाईस चांसलर थे, उन्हें विलायत जाने का अवसर मिला। वे स्वयं जाने के लिए अत्यन्त उत्सुक होकर अपनी माता से विदेश यात्रा के लिए आज्ञा लेने गए, किन्तु धार्मिकता से परिपूर्ण हृदय वाली उनकी माता ने उन्हें विदेश जाने की अनुमति नहीं दी। मातृभक्त मुखर्जी ने उसी क्षण विदेश जाने का विचार छोड़ दिया।

उस समय भारत के गवर्नर लार्ड कर्जन थे। उन्हें अब यह बात मालूम हुई तो उन्होंने आशुतोष मुखर्जी को बुलाकर कहा– ''आपको विलायत जाना चाहिए।''

मुखर्जी ने कहा– ''सर! मेरी माता की इच्छा नहीं है।'' लार्ड कर्जन कुछ सत्ता पूर्ण स्वर में बोले– ''जाकर अपनी माता से कहिये कि भारत के गवर्नर जनरल आपको विलायत जाने की आज्ञा दे रहे हैं।''

मातृगौरव से दीप्त मुखर्जी ने उत्तर दिया– ''मैं गवर्नर जनरल से निवेदन करता हूँ कि माता की आज्ञा का उल्लंघन करके मैं किसी भी दूसरे की आज्ञा का पालन नहीं कर सकता। चाहे वह दूसरा व्यक्ति भारत का गवर्नर जनरल ही क्यों न हो ?''

शिक्षा : हमें अपनी माँ की आज्ञा को ही सर्वोपरि स्थान में रखना चाहिए।

66. कठिन परिश्रम से सफलता

इस युग के महान् वैज्ञानिक एवं गणितज्ञ आइंस्टीन अपनी कक्षा में गणित विषय के सबसे कमजोर विद्यार्थी थे। बच्चे उनको बुद्धू या आइन स्टोन के नाम से चिढ़ाते थे, कभी-कभी 'बुद्धू' शब्द की चिट बनाकर चिपका देते थे। इतना होने के बाद भी वह चिढ़ते नहीं थे। प्रत्येक समय गणित सीखने का पुरुषार्थ करते रहते थे। एक बार अध्यापक ने बहुत बार सवाल समझाकर फिर आइंस्टीन से पूछा तो वह कुछ भी नहीं बोला। तब अध्यापक ने गुस्से में आकर कहा तुम सात जन्मों में भी गणित नहीं सीख सकते। गणित छोड़कर दूसरा विषय सीखो। यह बात आइंस्टीन को चुभ गई। उसने कठोर परिश्रम किया और फलस्वरूप बहुत बड़ा गणितज्ञ बन गया। सच है, पुरुषार्थ से किस कार्य की सिद्धि नहीं होती है।

यदि आपका बेटा, बेटी, भाई, बहिन दूसरे बच्चों के चिढ़ाने आदि के कारण स्कूल जाना बन्द कर देता है तो उनको समझाए कि बाप बच्चों के चिढ़ाने पर चिढ़ो नहीं, उसको मजाक समझो, अपना अपमान नहीं। उनके साथ घुल-मिल कर अच्छी मित्रता के साथ रहो। आप जितना चिढ़ोगे उतना ही वे ज्यादा चिढ़ायेंगे। जैसे- किसी पागल को कोई कुछ कहता है और वह उसको सुनकर यदि चिढ़ता है, गाली देने लगता है तो लोग उसे बार-बार वही बातें कहकर चिढ़ाने लगते हैं, अपन पागल थोड़े ही हैं, अपने को चिढ़ना नहीं चाहिए। तुम नहीं चिढ़ोगे तो वे अपने आप चिढ़ाना बन्द कर देंगे।

67. राजा और बन्दर

एक शिक्षक बन्दरों को प्रशिक्षण देने में बड़ा निपुण था। बन्दरों को पढ़ाकर बेचना उसने अपना व्यवसाय बना रखा था। एक दिन वह राज-सभा में पहुँचा। साथ में एक बन्दर था। राजा ने पूछा- क्या यह बन्दर प्रशिक्षित है? वह बोला- हाँ, इसे प्रशिक्षण देते पाँच वर्ष हो गए। प्रत्येक कला में यह दक्ष है। राजा ने उस बन्दर की कुछ परीक्षा ली। आखिर उसके प्रशिक्षण से राजा बहुत प्रभावित हुआ। उसने उसको खरीद लिया। राजा कहीं भी जाता तो बन्दर को वह हर समय साथ रखता। कभी-कभी उसके साथ मनोरंजन भी कर लेता। कुछ ही वर्षों में राजा और बन्दर में परस्पर आत्मीयता हो गई। वे एक-दूसरे के लिए प्राण देने को तैयार रहते थे। वह बन्दर तन-मन से राजा की परिचर्या भी करता था। उससे राजा को यह विश्वास हो गया कि यह वास्तव में मेरा वफादार है।

एक दिन राजा सो रहा था। बन्दर हाथ में नंगी तलवार लेकर राजा की सुरक्षा में बैठा पहरा दे रहा था। राजा के गले पर मक्खी बैठ गई। बन्दर ने उसे भगाने के लिए काफी प्रयत्न किया, पर मक्खी नहीं उड़ी, जिससे बन्दर ने क्रोध में आकर मक्खी को उड़ाने के लिए उस पर तलवार चला दी। राजा के प्राण-पखेरू उड़ गए।

बन्दर प्रशिक्षित अवश्य था, किन्तु उसमें मनन व चिन्तन नहीं था, जिसका दुष्परिणाम राजा को भोगना ही पड़ा। प्रशिक्षण के साथ-साथ चिन्तन-मनन व अनुभव की परम अपेक्षा है। अनुभव के अभाव में शिक्षा व विद्या भी घातक सिद्ध होती है।

68. संकल्प शक्ति

एक साधक एक चट्टान पर बैठे तपस्या कर रहे थे। एक जिज्ञासु ने पूछा – जिस चट्टान पर आप बैठे हो, इससे शक्तिशाली क्या है?

साधक ने कहा – लोहा है, जो चट्टान के भी टुकड़े-टुकड़े कर देता है।

जिज्ञासु ने पुनः पूछा – लोहे से शक्तिशाली क्या है ?

साधक ने कहा – अग्नि है, जो लोहे को भी पिघला देती है।

जिज्ञासु ने पुनः पूछा – अग्नि से शक्तिशाली क्या है ?

साधक ने कहा – पानी है, जो अग्नि को भी बुझा देता है।

जिज्ञासु ने पुनः पूछा – पानी से शक्तिशाली क्या है ?

साधक ने कहा वायु। वह जल को भी तितर-बितर कर देती है तथा पानी बरसाने वाले मेघों को भी तितर-बितर कर देती है।

जिज्ञासु की जिज्ञासा अभी भी शान्त नहीं हुई। उसने पुनः जिज्ञासा की कि – हवा से शक्तिशाली क्या है ?

साधक ने कहा – संकल्प शक्ति है। जिससे वह महान् से भी महान् कार्य कर लेता है एवं मोक्ष भी संकल्प शक्ति के माध्यम से प्राप्त कर लेता है।

- जो आदमी संकल्प कर सकता है, उसके लिए कुछ भी असंभव नहीं है।

इमर्सन

69. भक्त कैसा हो ?

राजा के एक मित्र ने राजा की सेवा के लिए एक सेवक दे दिया। राजा बड़ा उदार था अतः उसने पूछा कि भाई ! आप मेरे मित्र के सेवक हो, अभी तक आपने उसकी बहुत सेवा की है, अब तुम मेरी सेवा में रहोगे। बताओ आपका क्या नाम है ? सेवक बोला जिस नाम से आप चाहें पुकार सकते हैं। राजा ने पूछा – आप भोजन में क्या खाओगे ? सेवक बोला – आप जो खिलाएँगे। राजा ने पूछा – आप कपड़े कौन से पहनोगे ? सेवक बोला – जो आप पहना दोंगे। राजा आश्चर्यचकित रह गया। राजा ने फिर पूछा – ''आप काम क्या करोगे ?'' सेवक बोला – आप जो कराएँगे। असमंजस में पड़ गया और राजा ने अन्त में पूछा कि – भाई ! क्या आपकी कोई चाह नहीं है ? सेवक बोला– मालिक! सेवक की अपनी कोई चाह नहीं होती। इतना सुनते ही राजा ने सिंहासन से उतरकर सेवक को हृदय से लगा लिया और राजा बोला आप तो मेरे गुरु हो। आपने मुझे आज यह सिखा दिया कि कभी किसी को कोई चाह नहीं करना चाहिए और यह भी सिखा दिया कि – भगवान् के भक्त को कैसा होना चाहिए ? भक्त ऐसा हो कि उसकी अपनी कोई चाह न हो ? अत्यन्त शान्त निर्लोभी और समतावान हो।

- भक्त को भगवान् से कुछ याचना नहीं करनी चाहिए। अरे! जिस भक्ति के बल से मुक्ति का साम्राज्य मिल सकता है उससे संसार की तुच्छ सामग्री मांगकर भक्ति को क्यों दूषित करते हो ?

– आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज

(सागर बूँद समाय)

70. विनय

राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन कहीं जा रहे थे। साथ में उनका अङ्गरक्षक भी था। तभी उन्हें एक भिखारी मिला, उसने अपना टोपा उतारकर राष्ट्रपति का अभिवादन किया। राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन (अमेरिका) ने भी अपना टोपा उतारकर उसके अभिवादन का जवाब दिया। अङ्गरक्षक को यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ और थोड़ा अनुचित-सा भी लगा। इसलिए उसने राष्ट्रपतिजी से प्रश्न किया कि एक राष्ट्रपति के द्वारा सामान्य से भिखारी के लिए इस प्रकार अभिवादन करना क्या उचित है? अब्राहम लिंकन हँसने लगे और बोले- मैं आपसे प्रश्न करता हूँ कि क्या एक राष्ट्रपति के अन्दर भिखारी जितनी भी विनय नहीं होना चाहिए ? अङ्गरक्षक निरुत्तर रह गया। इस प्रकार विनय की महत्ता को सबको समझना चाहिए ?

71. उपयोग का चमत्कार

पण्डित भूधरदासजी सामायिक कर रहे थे, उसी समय एक चूहा उनके पैर में फोड़े को काटता रहा, जिससे फोड़े में बड़ा घाव हो गया। सामायिक से उठने के बाद जब उनके घर के सदस्यों ने देखा, तो उन्हें बड़ा दु:ख हुआ। अब उस फोड़े पर बार-बार मक्खी बैठती तो पण्डितजी उन्हें तुरन्त उड़ा देते, यह देखकर उनके भाई ने कहा - जब चूहा लगातार एक घण्टे तक काटकर इतना बड़ा घाव कर गया, तब तो आपने उसे भगाया नहीं, अब छोटी-सी मक्खी को बार-बार उड़ा रहे हैं। पण्डित भूधरदासजी ने उत्तर दिया - उस समय मैं अकेले अपने घर में (ध्यान में) था, वहाँ किसी की चिन्ता नहीं रहती। यहाँ अब शरीर के साथ भी हूँ, इसलिए उसकी चिन्ता भी रहती है।

72. करनी का फल

एक गरीब किसान था, वह आजीविका के लिए खेती करता था, किन्तु फसल अच्छी नहीं होने के कारण बेचारा परेशान रहता था। एक दिन गर्मी के मौसम में वह खेत में पेड़ की छाया में बैठा था। तभी सामने बिल में से सर्प निकला और फण उठाकर खड़ा हो गया। उसके मन में आया कि इस सर्प की सेवा करूँ तो मेरी फसल अच्छी होगी। यह सोचकर वह दूध लाया और एक बर्तन में डालकर बिल के पास रख आया। दूसरे दिन वह बर्तन देखने जाता तो उसमें दूध नहीं था और बर्तन में एक सोने की मुहर पड़ी थी। वह रोज ऐसा ही करने लगा।

एक दिन उसे किसी काम से बाहर जाना था, वह सोचता दूध कौन रखेगा ? बहुत सोचकर उसने अपने बेटे से कहा कि – बेटा खेत पर जाना और उस स्थान पर दूध रख आना। बेटे ने ऐसा ही किया। बेटे ने दूसरे दिन देखा बर्तन में एक सोने की मुहर है। मुहर देख वह सोचता है, इसके बिल में बहुत सी मुहरें होंगी। उन्हीं में से एक–एक मुहर सर्प लाकर देता है, इसलिए इसे मारकर सारी मुहरें एक साथ प्राप्त कर लेनी चाहिए। वह दूसरे दिन दूध लेकर गया और वहीं खड़ा हो गया। सर्प दूध पीने आया तो उसने एक बड़ा सा डंडा फेंककर मारा किन्तु निशाना चूक गया। सर्प ने शीघ्र ही चलकर उस बेटे को काट लिया, जिससे वह थोड़ी देर के बाद मर गया। जब उसका पिता वापस आया और उसने बेटे की करनी और मृत्यु का समाचार सुना तो उसे बहुत दुःख हुआ। पर उसने कहा – जो जैसा करता है, उसे वैसा ही फल मिलता है।

73. परोपकार

मदन नामक एक बालक दौड़ते-दौड़ते डॉक्टर के पास पहुँचा। डॉक्टर बालक को पहचानते थे, अतः वे चिन्तित होकर बोले- ''क्या बात है मदन। घर में कोई बीमार है क्या ?'' बालक ने उत्तर दिया- ''आप मेरे साथ शीघ्र चलिए, यह कहते हुए उसने डॉक्टर साहब का बैग उठा लिया और चलने लगा।'' डॉक्टर साहब भी मदन के पीछे-पीछे चल पड़े। मदन के घर के पास ही एक कुत्ता दर्द से तड़प रहा था। दोनों वहाँ पहुँचे कुत्ते के लिए मदन की तत्परता देखकर डॉक्टर द्रवित हो गए। उन्होंने कहा-''मैं तो घबरा गया था कि तुम्हारे घर में कोई बीमार है, अच्छा! कुत्ते की दवा हो जाएँगी। पर दवा लगाएगा कौन ? कहीं उसने काट लिया तो उल्टा ही असर होगा। जानते हो कुत्ते के काटने से आदमी मर जाता है।'' मदन ने दृढ़तापूर्वक कहा- ''डॉक्टर साहब आप दवा दीजिए, उसे लगाने का काम मेरा है।'' डॉक्टर साहब ने रुई के फाहे में दवा लगाई। बालक मदन ने एक लम्बी लकड़ी में फाहे को अच्छी तरह लपेटा और धीरे-धीरे कुत्ते के घाव के पास ले गया। पहले तो कुत्ता गुर्राया, परन्तु धीरे-धीरे जैसे ही उसके घाव में दवा से आराम लगा, वह चुप हो गया और कृतज्ञता से बालक की ओर देखने लगा। यह देख डॉक्टर साहब भी बहुत प्रसन्न हुए। बालक मदन प्रतिदिन कुत्ते के घाव को साफ करता और दवा लगाता रहा। कुछ दिन बाद कुत्ते का घाव ठीक हो गया। कुत्ता अपनी सेवा करने वाले मदन का भक्त बन गया। दोनों एक-दूसरे के घनिष्ट मित्र हो गए। वे बालक थे महामना मदनमोहन मालवीय। जो बाद में वाराणसी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति बने।

74. प्रत्येक वस्तु का महत्त्व

एक शिष्य सदैव अपने गुरु की आज्ञा का पालन करता था, उनकी मन लगाकर सेवा करता तथा अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करता था। इस प्रकार कई दिन के बाद वह एक दिन गुरु से बोला–''गुरुदेव आज मैं 25 वर्ष का हो गया हूँ। क्या अभी भी मेरी शिक्षा पूर्ण नहीं हुई?'' गुरु ने स्नेहपूर्वक उसे देखा और कहा– ''शिष्य आपकी शिक्षा तो पूर्ण हो गई है, लेकिन उस शिक्षा की परीक्षा अभी बाकी है।'' शिष्य ने आश्चर्य से पूछा, ''कैसी परीक्षा गुरुदेव ?''

गुरु ने कहा – ''जाओ इस जङ्गल से ऐसी वस्तु ढूँढ़कर लाओ, जिसका कुछ भी उपयोग न हो।'' शिष्य तत्काल जङ्गल चला गया और कुछ समय बाद वापस आकर बोला, गुरुदेव इस जङ्गल में तो क्या, सम्पूर्ण संसार में भी ऐसा कोई पदार्थ नहीं है, जो व्यर्थ हो। अतः मुझे जङ्गल में भी ऐसी कोई वस्तु नहीं मिली जो उपयोगी न हो। गुरु ने प्रसन्न होकर कहा–''शिष्य अब आपकी शिक्षा पूर्ण हो गई है, क्योंकि आपको प्रत्येक वस्तु का महत्त्व समझ में आ गया है।''

- महान् कार्यों के सम्पादन करने की आकांक्षा को ही लोग महत्त्व के नाम से पुकारते हैं। – कुरलकाव्य
- यदि चाहते हो कि अच्छे लोग तुमसे घृणा न करें, तुम्हारा आदर करें तो शिष्टाचार के नियमों का सावधानी से पालन करो।

  – नेपोलियन बोनापार्ट

75. यह कैसी मित्रता

दो मित्र थे। दोनों ही मित्र प्रतिदिन शाम को आपस में मिला करते थे तथा मैत्रीपूर्ण आमोद-प्रमोद में समय व्यतीत किया करते थे।

एक दिन दोनों ने यात्रा पर निकलने का निश्चय किया। दोनों ने अपने-अपने माता-पिता से आज्ञा ली और यात्रा पर निकल पड़े। यात्रा के मार्ग पर एक मित्र ने रास्ते से आते रक्षा के लिए वह पेड़ पर चढ़ गया। दूसरा मित्र सहज मन से यात्रा के मार्ग पर बढ़ गया और अनायास अपने सामने एकदम समीप भालू को देखकर भौंचक्का रह गया। अपनी रक्षा का तो उपाय उसे समझ में नहीं आया। उसे अपना मित्र भी दिखाई नहीं पड़ रहा था। तभी अचानक उसे याद आया कि भालू मरे हुए आदमी को नहीं खाता है और वह मरणासन्न अवस्था में लेट गया। श्वाँस को रोकते हुए मुर्दे की तरह लेटे हुए अपने जीवन और मृत्यु का एहसास करने लगा। तभी भालू समीप आया और उसे सूँघकर मरा हुआ जानकर छोड़कर चला गया।

थोड़ी ही देर बाद वह मित्र पेड़ से उतर कर मित्र के पास आया और उससे पूछा -मित्र, भालू तुम्हारे कान में क्या कह रहा था? तब उसने कहा - धोखेबाज व्यक्ति से मित्रता नहीं करना चाहिए। यह सुनकर वह मित्र बहुत शर्मिन्दा हुआ और उसने क्षमा याचना की।

शिक्षा : मित्र वही कहलाता है, जो संकट के समय भी सहायता करता है और संकट के समय धोखा देता है वह मित्र नहीं है, अतः ऐसे मित्रों से मित्रता नहीं करना चाहिए।

76. ईमानदार व्यक्ति

पण्डित गोपालदासजी बरैया अपनी धर्मपत्नी और बच्चे के साथ मुरैना से मुम्बई जा रहे थे। रास्ते में पण्डितजी के परिवार जनों में चर्चा चल पड़ी कि आज तो बच्चे का जन्मदिन है। आज यह तीन वर्ष का पूरा हो गया है। यह सुनकर पण्डितजी अवाक् रह गए।

फिर कुछ विचार करते हुए बोले – मेरे से आज गलती हो गई। जब बच्चा तीन वर्ष का हो गया तो उसका आधा टिकट अवश्य लेना चाहिए था, मुझे ध्यान नहीं रहा कि आज यह तीन वर्ष का हो गया है।

आखिर उन्होंने मुम्बई रेल्वे स्टेशन पर उतरकर रेल्वे कार्यालय में यह कहते हुए रेल्वे अधिकारी के पास पहुँचे उन्होंने पूरी घटना बताते हुए कहा – मुझे क्षमा करें। बच्चे का टिकट का न लेना मुझे उसकी आयु के बारे में जानकारी नहीं थी और यात्रा काल में यह चौथे वर्ष में प्रवेश कर चुका है। कृपया टिकट का रुपया जमा कर लें।

रेल्वे अधिकारी ने रुपया तो जमा कर लिए, किन्तु अन्त में एक वाक्य अधिकारी ने कहा – आज भी ईमानदार लोग हैं– सुना था जैन लोग ईमानदार होते हैं, आज मैं स्वयं आँखों से देख रहा हूँ।

शिक्षा : सभी व्यक्तियों को अपने जीवन में ईमानदारी से काम करना चाहिए। ईमानदारी का सर्वत्र सम्मान होता है। बिना टिकट यात्रा करना भी चोरी है। अतः उससे भी बचना चाहिए।

77. लक्ष्मी स्थिर नहीं

राजा भोज दानवीर था। जो भी आता उसे मुक्त हस्त से दान दे देता। किसी को भी खाली हाथ नहीं जाने देता। प्रतिदिन लाखों-लाखों रुपये का दान देते हुए देखकर मन्त्री ने सोचा-क्या करें, कैसे राजा को समझायें, इस प्रकार दान देना उचित नहीं है। राजा से साक्षात् कहने में वह असमर्थ था इसलिए मंत्री ने राजा के शयनागार की दीवार पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा दिया।

''**आपदार्थं धनं रक्षेत्**''आपत्ति के लिए धन की रक्षा करनी चाहिए। राजा शयन करके उठा। राज्य सभा में जाते-जाते दीवार पर अक्षरों को पढ़ा। उसके नीचे स्वयं दूसरा चरण लिख देता है- ''**श्रीमन्तामापदः कुतः**''श्रीमानों को आपत्ति कहाँ ? दूसरे दिन मन्त्री ने दूसरा चरण लिखा देखकर तीसरा चरण लिख दिया-''**संचिदपगता लक्ष्मीः**'' यदि वह लक्ष्मी चली जाए तब। फिर अगले दिन राजा ने चौथा चरण भी लिखा-''**संच्चितार्थो विनश्यति**'' संग्रह किया धन भी नष्ट हो जाता है। मन्त्री राजा के श्री चरणों में उपस्थित होता है। हाथ जोड़कर सिर झुकाकर विनय भाव से बोला - राजन्! मेरी गलती को कृपया क्षमा करें। आप तीक्ष्ण बुद्धि के धनी हैं। विशेषज्ञ हैं, चिन्तनशील हैं। मेरे जैसे अल्पज्ञ के अपराध को क्षमा कीजिए। आपकी गहरी तत्त्व भरी विचारधारा का स्वागत कौन नहीं करेगा ?

शिक्षा : लक्ष्मी स्थिर नहीं रहती। कभी कहीं, कभी कहीं। चाहे लाखों-करोड़ों का धन संचय कर लीजिए। उसका भी एक दिन विनाश अवश्य होता है। अतः बुद्धिमान व्यक्ति धन का संग्रह कभी भी नहीं करते।

78. गोखले की सत्यनिष्ठा

एक शिक्षक ने कक्षा के सभी विद्यार्थियों को कुछ सवाल घर से करके लाने के लिए दिए। दूसरे दिन शिक्षक ने सभी की कापियाँ देखी तो केवल एक विद्यार्थी के सवाल सही निकले। शिक्षक उस विद्यार्थी को पुरस्कार देने लगे। उसने पुरस्कार तो लिया नहीं, उलटे रोने लगा। शिक्षक को बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने रोने का कारण पूछा।

विद्यार्थी ने हाथ जोड़कर नम्रता से कहा – सर! आपने तो यह समझा होगा कि इन सवालों के जवाब मैंने अपनी बुद्धि से निकाले हैं किन्तु सच यह नहीं है। इन सवालों में मैंने अपने एक मित्र की मदद ली है। अब आप ही बताइए कि मैं पुरस्कार पाने लायक हूँ या दण्ड पाने लायक।

यह सुनकर शिक्षक बहुत प्रसन्न हुए और उसके हाथ में पुरस्कार देते हुए कहा – अब यह पुरस्कार मैं तुम्हें तुम्हारी सत्यनिष्ठा के लिए देता हूँ। सच बोलने वाला यही बालक देशभक्त गोपाल कृष्ण गोखले के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

- सच बोलने का सबसे बड़ा फायदा यह है कि तुम्हें याद नहीं रखना पड़ता कि तुमने किससे कहाँ क्या कहा था ?

  –राबर्ट बेन्सन

- सच्चे आदमी को हम धोखा नहीं दे सकते। उसकी सच्चाई हमारे हृदय में उच्च भावों को जागृत कर देती है।

  – प्रेमचन्द, सेवासदन

79. मन्त्र की शक्ति

स्वामी विवेकानन्द अमेरिका में विद्वानों की एक सभा में मन्त्र की शक्ति के बारे में प्रवचन कर रहे थे। उन्होंने जैसे ही मन्त्रों के द्वारा घटित होने वाले परिवर्तनों के बारे में बताना शुरु किया कि एक मशहूर विद्वान् व्यक्ति खड़ा होकर स्वामीजी की बात का प्रतिवाद करने लगा। स्वामीजी आप हमें मूर्ख बना रहे हैं। शब्दों के संयोजन से ही मन्त्र बनते हैं और शब्दों से बड़े परिवर्तन तो दूर की बात है, मन्त्र से पेड़ का एक पत्ता भी नहीं हिल सकता है। यह सुनकर विवेकानन्द ने उस व्यक्ति को डाँटते हुए कहा –"तुम तो गधे हो।" यह कहना था कि वह विद्वान् व्यक्ति गुस्से में उबल पड़ा, उसकी आँखें लाल हो गईं व गुस्से के कारण काँपने लगा। विवेकानन्द ने मन्द-मन्द मुस्कराते हुए कहा – क्यों महाशय क्या हुआ ? मैंने तो आपको केवल 'गधा' कहा था। केवल एक साधारण शब्द से आप में इतना परिवर्तन कैसे घटित हो गया। आप काँप क्यों रहे हैं ? जब साधारण शब्द के उच्चारण से आप में इतना परिवर्तन हो गया, फिर मन्त्र तो शब्द के शक्तिशाली संयोजन होते हैं, उनसे कुछ भी घटित हो सकता है। तब विद्वान् को समझ में आया।

- मन के साथ जिन ध्वनियों का घर्षण होने से दिव्य ज्योति प्रकट होती है, उन ध्वनियों के समुदाय को मन्त्र कहा जाता है।

– मंगलमन्त्र णमोकार : एक अनुचिन्तन

80. जैसे को तैसा

एक सेठजी की होटल के पास एक गरीब आदमी खड़ा हो गया– दुकान की मिठाई देखने के लिए। सेठ बाहर आया और कहने लगा– अरे तू यहाँ क्यों खड़ा है ? उस गरीब ने कहा – सेठजी गरीब मनुष्यों के भाग्य में श्रेष्ठ पदार्थों का भोग तो लिखा नहीं है, तुम्हारे यहाँ के खाद्य पदार्थों की गन्ध बहुत अच्छी है, इसलिए इनकी गन्ध लेने के लिए खड़ा हूँ।

सेठ ने कहा– ''तू मेरे पदार्थों की गन्ध ले रहा है, उसका तुझे दण्ड देना पड़ेगा। मेरे पदार्थों की सुगन्ध भी बहुत कीमती है– इसलिए तो मुझे सुगन्ध का मूल्य देकर जा।'' गरीब ने कहा– ''कल पैसा लेकर आऊँगा– आज मेरे पास नहीं हैं।''

कुछ समय के बाद सेठ के घर के पीछे सिक्का की आवाज आई। वही गरीब एक पत्थर पर पटक–पटक कर सिक्का बजा रहा था। सेठ तुरन्त घर के पीछे गया और गरीब से कहने लगा– ''अरे तेरे पास सिक्का है, सुगन्ध लेने का सिक्का मुझे दो।''

गरीब ने कहा – ''मेरे पास सिक्का है, आपको कैसे मालूम पड़ा ?'' सेठजी ने कहा – आवाज आ रही थी। गरीब ने कहा – आपने मेरे रुपया की आवाज क्यों सुनी ? आपको दण्ड देना पड़ेगा। तुम्हारे यहाँ ली सुगन्ध का मूल्य जब मुझे देना पड़ेगा तब मेरे रुपया की आवाज का सुनने में भी तुम्हें रुपयो देना पड़ेगा। सेठजी लज्जित होकर घर चला गया।

शिक्षा : हम दूसरों के साथ वही व्यवहार करें, जो हमें स्वयं के लिए पसन्द हो।

81. लालच का फल

एक चतुर हलवाई किसी सेठ के यहाँ से दावतों में काम आने वाले चाँदी के बर्तन किराये पर ले जाया करता था और काम हो जाने पर नियत समय पर लौटा देता था। एक बार जब वह बर्तन लौटाने आया तो दस छोटे बर्तन अलग से देकर कहा कि – आपके बर्तनों ने बच्चे दिए हैं। बर्तन आपके तो बच्चे भी आपके। इन्हें रख लें।

मुफ्त की आमदानी सेठ को भी बुरी न लगी। उसने बढ़े हुए बर्तन रख लिए और प्रसन्न होकर कहा कि – आपको जितने बर्तनों की जरूरत हुआ करे तो निःसंकोच ले जाया कीजिए। कुछ दिन तो ऐसा ही व्यवहार चलता रहा। एक दिन हलवाई ने बड़ी दावत की सूचना दी और सारे बर्तन देने के लिये सेठ से आग्रह किया। बच्चों के लोभ में सेठ ने सारे बर्तन निकाल कर दे दिए।

बर्तन लेकर हलवाई चुप बैठ गया। कहाँ तो वह पहले अपने आप बर्तन लौटा जाता था, पर अब तकाजे करने पर भी नहीं लौटा रहा था। अतः एक दिन सेठजी उसके घर स्वयं गये और बर्तन माँगे। हलवाई ने चेहरे को दुखी बनाते हुए कहा कि – बर्तन तो सभी मर गये। मैं किस मुँह से आपके पास आता ? इस पर काफी कहा सुनी हुई और आसपास के लोग इकट्ठे हो गये। उन्हें जब सही बात का पता चला तो वे भी हलवाई का पक्ष लेकर एक मुँह से कहने लगे। जो बर्तन बच्चे दे सकते हैं, वे क्या मर नहीं सकते ?

शिक्षा : हमें समझना चाहिए कि यदि कोई व्यक्ति वस्तु मुफ्त में दे रहा है तो उसे नहीं लेना चाहिए।

82. एक अक्षर से तीन उपदेश

एक बार कंजूस, क्रूर और भोगी तीनों गुरुजी के पास विद्या अध्ययन कर रहे थे। कुछ समय व्यतीत होने पर उन्होंने उनसे उपदेश ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की, सबसे पहले कंजूस ने कहा-गुरुजी! मुझे उपदेश दीजिए, गुरुजी ने एक ही अक्षर कह दिया।

कंजूस ने कहा - मैं समझ गया क्योंकि मैं बहुत कंजूस हूँ, इससे आपने मुझे दान देने का उपदेश दिया है।

फिर क्रूर ने कहा - आप मुझे उपदेश दीजिए। गुरुजी ने- उससे भी कहा ।क्रूर व्यक्ति भी समझ गया कि मैं हमेशा हिंसा करता रहता हूँ। अतः गुरुजी ने कहा है कि दया करो।

अब भोगी व्यक्ति ने कहा मुझे भी उपदेश दीजिए- गुरुजी ने उससे भी कहा। भोगी समझ गया, मैं दिन-रात भोगों में लीन रहता हूँ। इससे गुरुजी ने मेरे ऊपर उपकार कर कहा कि इन्द्रियों का दमन करो अर्थात् संयम का उपदेश दिया है।

शिक्षा : दान, दया और दमन (संयम) ये ही पुण्य अर्जन के माध्यम हैं। इनके करने से पुण्य का संचय होता है, जीवों का कल्याण भी होता है और जगत् में उनका नाम भी होता है। अतः प्रत्येक मानव को ये तीनों करना चाहिए।

- उस दान में कोई पुण्य नहीं, जिसका विज्ञापन हो- मसीलन
- दया ही धर्म की जन्मभूमि है- चाणक्य नीति
- संयम सुख का साधन है। संयमी सच्चा तपस्वी होता है।

- स्वामी विवेकानन्द

83. महा-वरदान

एक हट्टा-कट्टा नौजवान भिखारी एक सेठजी के पास पहुँचा और याचना करने लगा। सेठजी ने उसकी ओर दृष्टि उठाकर देखा तो उसे अच्छा नहीं लगा किन्तु सहानुभूति प्रकट करते हुए प्रेम से बोले- ''भाई! तेरे पास क्या-क्या है और क्या नहीं ?'' प्रश्न सुनते ही भिखारी सिटपिटा गया। हाथ में लिए हुए दो बर्तन और चादर दिखाते हुए बोला इनके अलावा कुछ नहीं है।

सेठजी ने ममता भरे स्वर में कहा - अच्छा, मेरा कहना मानोगे ? मैं तुम्हारी सहायता करूँगा ? भिखारी ने स्वीकृति दे दी।

सेठजी भिखारी को बाजार ले गए। उनका सामान बिकवा कर उसे एक कुल्हाड़ी और थोड़ा-सा आटा दिला दिया और मधुर स्वर में बोले भाई - इस आटे से तो आज का काम चला लेना। कल से रोजाना लकड़ी काटो और बाजार में बेचकर बड़ी प्रसन्नता पूर्वक अपने परिश्रम की कमाई खाओ।

भिखारी ने वैसा ही किया। वह कुछ ही दिनों में निहाल हो गया और यह अनुभव करने लगा कि सेठजी का दान महा-वरदान था। उस दिन के बाद उसने कभी भीख नहीं माँगी।

शिक्षा : हमें भीख से नहीं बल्कि पुरुषार्थ के माध्यम से अपना जीवन चलाना चाहिए तथा आप भिखारी को भीख के साथ शिक्षा भी दें, जिससे वह भीख माँगना छोड़कर पुरुषार्थ करे।

- पुरुषार्थ के अभाव में भाग्य के भरोसे बैठे रहना ठीक हाथ की रेखाओं की गिनती करते रहने के समान है।

84. एकत्व में शान्ति

राजर्षि नाभिराय एक बार भयंकर दाह-ज्वर से पीड़ित थे। हकीम और वैद्य उनका उपचार करके थक गए किन्तु उनके शरीर की वेदना शान्त नहीं हो सकी। अन्त में सभी ने एक साथ कहा- ''बावनगोशीर्ष चन्दन का लेप करने से महाराज का दाह ज्वर शान्त हो सकता है।'' सभी रानियों ने एक साथ चन्दन घिसना प्रारम्भ किया उनके हाथों के कङ्गन और चूड़ियाँ बजने लगी। ज्वराक्रान्त राजा को उनकी आवाज अच्छी नहीं लगी और कहने लगे- ''यह आवाज मुझे कष्ट पहुँचा रही है।'' रानियों ने यह सुनते ही अविलम्ब सब कङ्गन खोल दिए चूड़ियाँ उतार दीं। केवल सौभाग्य का चिह्न मानकर एक-एक चूड़ी हाथ में रखी। चन्दन घिसा जा रहा था किन्तु चूड़ियों की आवाज बन्द हो गयी। राजा को एकदम आवाज सुनाई देनी बन्द हो गई तो उन्होंने आश्चर्य से पूछा- ''क्या चन्दन घिसा जाना बन्द हो गया ?'' रानियों ने कहा नहीं महाराज! चन्दन तो हम सभी घिस रहे हैं, किन्तु हाथों में अब एक-एक ही चूड़ी पहनी है। अतः आवाज बन्द हो गई है।

शिक्षा : एकत्व में शान्ति है और अनेकत्व में अशान्ति है। एक से दो जहाँ होते हैं, वहाँ फिर दुःख और संसार का विस्तार प्रारम्भ हो जाता है।

85. दुःख का कारण मेरापन

एक सेठजी का शहर के बीचों-बीच एक बहुत बड़ा मकान था, मकान बड़ा सुन्दर था, कीमती था, मालिक उसे बेचना चाहता था। एक दिन अचानक वह मकान धू-धूकर जल रहा है। मकान मालिक ने सुना तो वह दौड़ा-दौड़ा आया और जलते हुए मकान को देखकर रोने लगा तथा कहता बुझाओ-बुझाओ। कुछ ही देर बाद बड़ा बेटा भागता-भागता आया बोला पिताजी! मकान जलने पर आप रोते क्यों हो ? इस मकान का तो सौदा हो चुका है। मैंने कल ये मकान बेच दिया है। छोटे भाई दौड़ा-दौड़ा आया और बोला मकान जल रहा है और आप दोनों खड़े-खड़े देख रहे हैं। बड़ा भाई-छोटे भाई से अरे! तू पागल हो गया है क्या ? मकान तो बिक चुका है। अरे- भाई साहब! आज ही सुबह-सुबह उन्होंने सौदा केन्सिल कर दिया है। इतना सुनना था कि वह भाई, बड़ा भाई और पिताजी भी रोने लगे।

शिक्षा : वस्तु मेरी थी, जल रही थी तो दुःख हो रहा था, वस्तु मेरी नहीं और जल रही है तो दुःख नहीं हो रहा है। मेरापन ही दुःख का कारण है, अतः सुखी होना है तो इस मेरापन को छोड़ना होगा।

- यह शरीर धन, घर, स्त्रियाँ, पुत्र, मित्र, वैरी, सब तरह से अपने आत्मा से अन्य स्वभाव वाले हैं, परन्तु मोही मूर्ख उनको अपना मानता है।

–इष्टोपदेश

86. मित्रता की पहचान

एक लोमड़ी एक छिपकली, एक बकरी और एक चुहिया ये चारों सहेलियाँ थीं। उन्हें एक बार नदी पार जाना था, किन्तु पार जाने का कोई साधन नहीं था। नदी में एक बड़ा कछुआ रहता था। एक बार जब वह किनारे पर आया तो चारों ने कहा, ''हम सच्ची सहेलियाँ हैं एक-दूसरे का साथ कभी नहीं छोड़ती। कृपया हम सबको उस पार लगा दो।''

कछुये को उनकी मित्रता बहुत अच्छी लगी तब उसने पीठ पर बिठाकर उस पार ले जाने की बात स्वीकार कर ली। जब चारों उसकी पीठ पर बैठ गई और कछुआ चलने लगा। जब कछुये को कुछ थकावट महसूस हुई तो थोड़ा दूर चलने पर उसने कहा, इतने वजन को लेकर मैं नहीं चल सकता तुममें से एक उतर जाओ अब मुझसे चला नहीं जाता। चुहिया ने छिपकली को कमजोर देखा और नदी में धकेल दिया कुछ दूर चलने पर कछुये ने फिर वजन भारी होने की बात कही तो लोमड़ी ने चुहिया को कमजोर देखकर उसे नदी में धकेल कर लोमड़ी और बकरी पीठ पर बैठी रहीं।

कुछ देर बाद फिर कछुये ने वजन भारी होने की बात कही तो बकरी ने लोमड़ी को नदी में धकेल दिया। अब बकरी पीठ पर अकेली बैठी थी तो कछुये ने कहा मैं वास्तव में यह देखना चाह रहा था कि तुम सच्ची सहेलियाँ हो या झूठी। तुम तो झूठी सहेलियाँ हो तभी तो तुमने कमजोर को गिरा दिया तब तुम्हारी सच्ची मित्रता कहाँ रही ? यह कहकर कछुये ने डुबकी लगाई और बकरी को भी नदी में डुबा दिया। स्वार्थपूर्ण मित्रता का परिणाम बुरा होता है।

87. माता-पिता ही सर्वोपरि

गाँधीजी जब बच्चे थे, स्कूल में पढ़ने के लिए जाते थे। उनकी कक्षा में अनेक विद्यार्थी थे। एक दिन एक अध्यापक ने कक्षा के बच्चों से एक प्रश्न किया कि तुम अपने माता-पिता के पास जंगली रास्ते से कहीं जा रहे हो। अचानक तुम्हारे सामने शेर आ जायेगा तो तुम क्या करोगे ?

एक बच्चे ने उत्तर दिया- मैं पापा के कन्धों पर बैठ जाऊँगा। दूसरे ने कहा - मम्मी के पीछे छुप जाऊँगा। तीसरे ने कहा - मैं दौड़ लगाकर वहाँ से भाग जाऊँगा। चौथे ने कहा- मैं शेर से कुस्ती लड़ने लगूँगा आदि-आदि अनेक प्रकार के उत्तर बच्चों ने दिए। जब गाँधीजी का नंबर आया तो उन्होंने कहा -आचार्य जी मैं शेर को देखते ही उसके सामने जाकर खड़ा हो जाऊँगा।

आचार्य जी ने पूछा बेटा तुम ऐसा क्यों करोगे, ऐसा करने से तुम्हें क्या लाभ होगा? गाँधीजी ने कहा - आचार्य जी ऐसा करने से शेर मुझे खाकर अपनी भूख मिटा लेगा। मेरे माता-पिता की रक्षा हो जायेगी। माता-पिता का जीवन बचाना क्या पुत्र का कर्त्तव्य नहीं है?

गाँधीजी के उत्तर को सुनकर आचार्य जी बहुत प्रसन्न हुए। माता-पिता के लिए अपनी जान देने के लिए तैयार रहने वाले व्यक्ति ही तो राष्ट्रपिता बनने के योग्य हो सकते हैं, वे राष्ट्रपिता बनकर पूरे देश की रक्षा करते हैं।

88. बड़ों की नम्रता

एक दिन अमेरिका के राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन घोड़े पर सवार होकर भ्रमण के लिए बाहर निकले। एक स्थान पर देखा कि कुछ मजदूर एक भारी लकड़ी को छत पर चढ़ाना चाहता है, लेकिन लकड़ी वजनदार थी। यदि एक आदमी और हाथ लगाता (सहारा देता) तो लकड़ी आसानी से छत पर चढ़ जाती। ठेकेदार खड़ा-खड़ा उन मजदूरों को साहस दे रहा था, लेकिन हाथ नहीं लगा रहा था। राष्ट्रपति ने ठेकेदार से कहा - ''तुम हाथ क्यों नहीं लगा देते।''

ठेकेदार ने लाल-पीली आँखें निकाल कर जवाब दिया - ''मैं ठेकेदार हूँ। मेरा काम मजदूरों से काम लेना है, न कि खुद काम करना।''

''अच्छा यह बात है ?'' कहकर राष्ट्रपति घोड़े से उतरकर लकड़ी में भरपूर शक्ति के साथ हाथ लगा दिए। लकड़ी ऊपर पहुँच गई। राष्ट्रपति ने ठेकेदार से कहा - नमस्कार साहब! यदि फिर कभी भारी लकड़ी में हाथ लगाने के लिए एक आदमी की आवश्यकता पड़े तो मुझे बुला लेना। मेरा नाम जार्ज वाशिंगटन है।

यह सुनते ही ठेकेदार दौड़ा और राष्ट्रपति के चरणों में गिरकर रोने लगा और उसने राष्ट्रपति से क्षमा माँगी। तब राष्ट्रपति ने कहा- तुम गरुर का अभ्यास कर रहे हो और मैं नम्रता में मानवता का दर्शन कर रहा हूँ, इसमें क्षमा की क्या बात है ?

शिक्षा : बड़े व्यक्ति में अहंकार होता तो जनता उसे अच्छा नहीं मानती और बड़े व्यक्ति में नम्रता होती है तो उसे जनता अच्छा मानती है। अतः सभी में नम्रता होनी चाहिए।

89. चाणक्य का आदर्श

एक बार सम्राट् चन्द्रगुप्त के राज्य में बहुत सर्दी पड़ी। लोग ठंड से ठिठुरकर मरने लगे। शीत के प्रकोप से प्रजा को बचाने के लिए महामंत्री चाणक्य ने घोषणा करवा दी कि सभी समर्थ लोग एक-एक कम्बल जमा करें ताकि उन्हें निर्धनों के बीच बाँटा जा सके। लोगों ने घोषणा सुनते ही कम्बल जमा कराना प्रारम्भ कर दिया। चाणक्य की कुटिया के आगे कम्बलों का अंबार लग गया।

एक चोर ने जब उन्हें देखा तो उसका मन ललचा उठा। वह कम्बल चुराने के लिए चाणक्य की कुटिया के पास पहुँचा और वही छुप गया। उसने देखा कि चाणक्य एक फटा-पुराना कम्बल ओढ़े बैठे ठिठुर रहा है। तभी उनसे मिलने एक विदेशी आया। उसने चाणक्य से कहा-''मान्यवर! आपके सामने नए-नए कम्बलों का ढेर लगा है फिर भी आपने ऐसा कम्बल ओढ़ रखा है, जिससे शीत से आपका बचाव संभव नहीं है।'' इस पर चाणक्य ने मुस्कराकर कहा - आप जिन कम्बलों की ओर संकेत कर रहे हैं, वे प्रजा के हैं। उन पर केवल उन्हीं का अधिकार है। ये उन्हीं के काम आएँगे।

विदेशी व्यक्ति यह सुनकर आश्चर्यचकित हो गया। कुटिया के पास छुपा चोर भी यह सुन रहा था। वह अपने को कोसने लगा कि एक वह है जो गरीबों के कम्बल चुराने आया है और दूसरी तरफ चाणक्य है, जो प्रजा के लिए स्वयं कष्ट उठा रहे हैं। उसने चाणक्य के सामने आकर क्षमा माँगी और कभी चोरी ने करने का संकल्प किया।

90. साधक की सहनशीलता

स्वामी विवेकानन्द जब अमेरिका पहुँचे उनका लिवास केशरिया रङ्ग था। लम्बा चोंगा, सिर पर पगड़ी पहने थे। उनकी अजीब पोशाक को देखकर बच्चे मजा लेने लगे। कुछ हँसने लगे, कुछ उन्हें मार्ग से गुजरते देखकर उन पर पत्थर फेंकने लगे।

एक दिन वे रास्ते से गुजर रहे थे। बच्चों ने उन पर पत्थर फेंकना प्रारम्भ कर दिया। स्वामीजी आगे बढ़ते जा रहे थे कभी कोई पत्थर उनको लग जाता, कभी कोई पत्थर टूटकर गिर जाता। तभी एक पादरी भी वहाँ से गुजर रहा था। वह इस मार्मिक दृश्य को न देख सका। उसने बीच में आकर एक पत्थर उठाकर उन बच्चों को धमकाया और उन्हें भगा दिया तथा स्वामी विवेकानन्द के पीछे-पीछे वह चलने लगा कि अब कोई बच्चा उन्हें पत्थर न मार सके।

स्वामी विवेकानन्द ने देखा कि अचानक पत्थर बरसने बन्द हो गए हैं। तभी उन्होंने पीछे पलटकर देखा तो पादरी ने कहा - ''स्वामी जी अब आप निश्चिंत हो जाए, मैंने उन बच्चों को भगा दिया है।'' तब स्वामीजी ने कहा - ''यह आपने क्या किया - बना बनाया खेल बिगाड़ दिया।'' पादरी ने कहा-ये कैसा खेल ? स्वामी विवेकानन्द ने मुस्कराते हुए कहा - पत्थर (मनुष्य का शरीर जड़), पत्थर फेंक रहा था और पत्थर इस पत्थर (शरीर) को लग रहा था, मैं (आत्मा) इस खेल को देख रहा था।

शिक्षा : साधक काँटों में भी फूल खोजते हैं। बस जीवन ऐसा ही एक खेल है जो इसे समझ लेते हैं, जीवन उनके लिए मुक्ति का द्वार बन जाता है।

91. उदारता

पंजाब केसरी महाराजा रणजीतसिंह कहीं जा रहे थे। अचानक एक पत्थर आकर उनको लगा। महाराजा को बहुत वेदना हुई। राज्य कर्मचारी दौड़े और एक बुढ़िया को लाकर उनके सामने उपस्थित कर दिया।

बुढ़िया भय से काँप रही थी। उसने हाथ जोड़कर कहा – ''महाराजा! मेरा बेटा तीन दिनों से भूखा था, खाने को कुछ नहीं था। मैंने पके आम को देखकर पत्थर मारा था। पत्थर लग जाता तो आम टूट कर गिर जाता और मैं बच्चे को खिला देती, किन्तु मेरे दुर्भाग्य से आप बीच में आ गए। पत्थर आपको लग गया। मैं निर्दोष हूँ महाराज! मैंने आपको पत्थर नहीं मारा था। क्षमा कीजिए।''

बुढ़िया की बात सुनकर महाराजा ने अपने मंत्री से कहा – ''बुढ़िया को 1000 रुपये और भोजन सामग्री देकर आदरपूर्वक घर भेज दो।''

मंत्री ने कहा – महाराज! आप क्या करते हैं। इसने आपको पत्थर मारा है, इसे तो कठोर दण्ड मिलना चाहिए।

महाराजा ने कहा –'' भाई! जब वृक्ष पत्थर मारने पर सुन्दर, मीठा फल देता है, तब मैं महाराजा होकर इसे दण्ड कैसे दे सकता हूँ।''

- दुष्ट अपनी दुष्टता, सर्प अपना विष, सिंह रक्तपान जिस प्रकार नहीं छोड़ता, उसी प्रकार उदार अपनी उदारता नहीं छोड़ता।

92. दृष्टि ही सृष्टि है

घटना उस समय की है, जब श्री राम लंका से सपरिवार वापस आ गए थे। एक बार श्रीराम, सीता, लक्ष्मण एवं हनुमान बैठे-बैठे युद्ध की चर्चा कर रहे थे। उसी प्रसंग में सीता अशोक वाटिका के बारे में कह रही थी कि वहाँ हर तरफ सफेद फूल खिले हैं। इसी बीच हनुमानजी ने कहा - माता जरा ध्यान से बोलिए वहाँ फूल सफेद नहीं लाल थे। दोनों अपनी-अपनी बात कह रहे थे। झगड़ा बहुत बड़ा हो गया। तब एक ही उपाय था कि श्रीराम इसका निर्णय करें, जो वह कहेंगे, वही मान्य होगा।

श्रीराम ने कहा - सीताजी जो कह रही वही सत्य है। तब हनुमानजी ने कहा, आप तो सीताजी का पक्ष ले रहे हो। श्रीराम ने कहा मैं सीता का पक्ष नहीं ले रहा हूँ। हनुमान जब तुम वहाँ गए थे तब तुम इतने क्रोध में थे, आँखें तुम्हारी लाल थीं, इससे तुम्हें सफेद फूल भी लाल दिखाई दे रहे थे।

शिक्षा : जब हम बदलेंगे और हमारी दृष्टि बदलेगी तत्क्षण सारी सृष्टि बदल जाएगी।

- जिस वस्तु से वीतरागता प्राप्त हो सकती है, उसी वस्तु से रागी व्यक्ति राग प्राप्त कर लेता है, यह दृष्टि का ही परिणाम है।

– आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज

(परमार्थ देशना)

93. जीवन चरित्र का लेखन

एक राजदरबार का एक विद्वान् किसी महात्मा का अनन्य भक्त था। किसी मित्र ने उनसे पूछा – ''पण्डितजी! महात्माजी महान् योगी और पहुँचे हुए महापुरुष हैं। उनके जीवन की बहुत सी अप्रकट बातों को भी आप जानते हैं तो आप उनका जीवन चरित्र क्यों नहीं लिखते?''

पण्डितजी ने बड़ी गम्भीरता के साथ कहा – ''मैं महात्मा जी का जीवन चरित्र लिखने के प्रयत्न में लग रहा हूँ, मैंने कुछ प्रारम्भ भी कर दिया है।''

उस मित्र ने फिर आतुरता के साथ पूछा –''जीवन चरित्र कब तक प्रकाशित हो जाएगा पण्डितजी ?''

यह सुनकर पण्डितजी ने मुस्कराकर कहा – ''आपने शायद यह समझा होगा कि मैं महात्माजी का जीवन चरित्र कागजों पर लिख रहा हूँ, ऐसी बात नहीं है। आप भूलते हैं। मेरे विचार से तो महात्माजी का जीवन चरित्र मनुष्य के जीवन में लिखा जाना चाहिए और मैं तो यथा–साध्य उनके जीवन को अपने जीवन में उतारने की ही कोशिश कर रहा हूँ।''

शिक्षा : महापुरुषों का चरित्र हमें अपने जीवन में उतारना चाहिए।

जीवन का रहस्य है – निःस्वार्थ सेवा।

–महात्मा गाँधी

94. निश्चय-व्यवहार

कवि बनारसीदासजी ने नाटक समयसार में लिखा है – एक आदमी पहाड़ पर जन्मा, वहीं रहने लगा, कभी पहाड़ से नीचे नहीं उतरा। एक आदमी नीचे पृथ्वी पर जन्मा, वही रहने लगा, कभी पहाड़ पर नहीं गया।

एक दिन पृथ्वी वाले आदमी को पहाड़ पर एक आदमी दिखाई दिया उसने सोचा –''यह मानव जैसा कीड़ा कहाँ से आया ? उसी समय पहाड़ वाले आदमी ने नीचे एक आदमी को देखा और सोचा यह मानव जैसा कीड़ा कहाँ से आया ?''

जब दोनों थोड़ी दूर आगे बढ़कर पास आए तो ज्ञात हुआ कि यह मानव है, जितना बड़ा मैं हूँ उतना बड़ा ही यह है। उसी प्रकार जब तक व्यवहार और निश्चय दूर-दूर हैं, तब तक वे मिथ्यावादी हैं और जब पास आ जायें, समीप रहें, समान रूप में रहें, तब वे दोनों सत्य हैं।

न सर्वथा व्यवहार झूठा है, न सर्वथा निश्चय झूठा है। व्यवहार और निश्चय जुदा-जुदा खण्डों में रखकर आज व्यक्ति मिथ्यात्व के पोषक हो रहे हैं, जबकि मिथ्या की मथानी से सत्य का मक्खन नहीं निकाला जा सकता है।

- वह व्यवहार, व्यवहार नहीं माना जाता जो निश्चय की ओर न ले जाए और वह निश्चय, निश्चय नहीं माना जाता, जो व्यवहार को बिल्कुल ही तोड़कर रख दे, गौण कर दे।

– आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज

95. माँ की ललकार

एक सेनापति था। उसके देश का दूसरे देश से युद्ध चल रहा था। माँ ने कहा –''बेटा! मर जाना, किन्तु युद्ध भूमि से पीठ दिखाकर मत आना।'' बेटा युद्ध स्थल पर गया। कुछ समय बाद वहाँ से भागकर घर आ गया और अपने कमरे का दरवाजा बन्द करके बैठ गया।

माँ को ज्ञात हुआ तो वह दुःखी और चिन्तित हुई। उसने विचार किया–''मैंने अपने पुत्र को हमेशा अच्छी–अच्छी बातें सिखायीं, अच्छे संस्कार डाले, धर्म की शिक्षा दी, फिर यह कायर कैसे निकला ?'' बेटे के इस कार्य को अपने दूध का अपमान समझकर दुःखी हो रही थी।

माँ को अत्यन्त उदास और दुःखी देखकर घर की एक दासी ने पुत्र की कायरता का कारण बताते हुए कहा – ''माँ, आप एक दिन मन्दिर गयी थीं, आपका यह पुत्र रो रहा था। मैंने इसे चुप कराने हेतु दया करके अपना दूध पिला दिया था।''

माँ ने पुत्र से कमरे के बाहर जाकर ऊँचे स्वर में कहा – ''दासी के एक बार के दुग्धपान ने इतना असर किया और मैंने तो वर्षों दुग्धपान कराया उसका क्या कोई असर नहीं पड़ा तुम पर ?''

माँ की ललकार और दूध की याद ने पर्याप्त प्रभाव डाला। माँ को चेहरा न दिखाकर पीछे के दरवाजे से पुनः युद्ध भूमि में जा खड़ा हुआ और फिर विजयी होकर ही घर वापस आया।

शिक्षा : माँ की कोख तो पाठशाला की भाँति है। धन्य हैं, वे माँ जो पुत्र को समाज, राष्ट्र और धर्म की शिक्षा–दीक्षा से विभूषित करने में अपनी कोख का गौरव समझती हैं।

96. दाँत क्यों गिरे

चीनी दार्शनिक कनफ्यूशियस ने अपने शिष्यों से पूछा – ''मेरा मुख देख रहे हो। इसमें पहले दाँत थे। क्या अब भी दाँत दिखाई दे रहे हैं ?''

शिष्यों ने गुरु का कहना व्यर्थ नहीं समझा बोले – दाँत तो नहीं दिखाई दे रहे हैं। और जीभ ? – अगला प्रश्न कनफ्यूशियस ने किया।

''जीभ तो दिखाई दे रही है,'' इस बार शिष्यों ने उत्साह से उत्तर दिया। कनफ्यूशियस ने पुनः प्रश्न किया जब मुख में दाँत और जीभ दोनों रहते तो दाँत कहाँ गए?

जब शिष्य उत्तर नहीं दे पाए तब कनफ्यूशियस ने कहा – ''दाँत कठोर थे। इसलिए या तो वे सब गिर गए या उखाड़ दिए गए। जीभ कोमल थी, इसलिए बची रही। अतः तुम्हें भी कोमल बनना चाहिए। कठोर बनकर रहोगे तो गिर जाओगे या उखाड़ दिए जाओगे।''

शिक्षा : दाँत जन्म के बाद आते हैं एवं प्रायः मृत्यु से पहले चले जाते और जीभ जन्म से मृत्यु तक साथ रहती है। दाँत कठोर होते हैं इसलिए पहले चले जाते हैं। जीभ मुलायम होती है, अतः मृत्यु तक साथ रहती है। अतः हम सब मृदु स्वभावी बनें।

- विनम्रता, कोमलता मनुष्य को उदात्तीकरण की ओर ले जाती है। यह जीवंतता का एक सहज गुण भी है। जीवन शुष्क रेत ही नहीं, जीवन सरल, तरल, संगीत व सरिता की भाँति है, जैसे जीभ है तरल और दाँत हैं कड़क।

97. देश के प्रति आस्था

एक भारतीय व्यक्ति बल्ब बनाने की विधि जानने हेतु जापान गया। वहाँ वह एक कीमती घड़ी अपने उपयोग के लिए खरीद कर लेता है। एक दिन वह वहाँ की एक होटल में जलपान आदि करके वापस आ जाता है। जब वह अपने कार्यालय में आता है तो उसे ध्यान आता है कि घड़ी तो होटल में ही रह गयी। वह यह सोचकर उदास हो जाता है कि अब घड़ी नहीं मिलने वाली। वहीं एक और महिला कार्य करती थी। उसको जब उदास देखा तो पूछती है कि आपकी उदासी का कारण क्या है ? तब वह भारतीय कहता है कि मैं अपनी कीमती घड़ी होटल में भूल आया हूँ, अब घड़ी वहाँ नहीं मिलेगी। महिला कहती है – क्यों नहीं मिलेगी? अवश्य मिलेगी। भारतीय कहता है – कोई उठा ले गया होगा, इसलिए वह नहीं मिल पायेगी। यह सुनकर वह महिला रोने लगती है। कहती है – क्या आप मेरे देशवासियों को चोर समझते हैं ? आप विश्वास कीजिए, आपकी घड़ी अवश्य मिलेगी। होटल के मालिक से बात करते हैं, अन्दर जाकर देखते हैं, घड़ी उसी स्थान पर रखी थी।

- हमें अपने राष्ट्र के प्रति गौरव, भक्ति और समर्पण होना चाहिए। हमारा देश हर तरह से समृद्धशाली बने तथा शांति, अहिंसा का विस्तार हो, ऐसी लोक हितकारी भावना भी रखनी चाहिए।

– आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज

(सागर बूँद समाय)

98. पाठ याद हो गया

कौरव और पाण्डव जब बचपन में पढ़ा करते थे, तब एक दिन उन्हें पढ़ाया गया, सत्य बोलना चाहिए, क्रोध छोड़ना चाहिए। दूसरे दिन सबने पाठ सुना दिया, किन्तु युधिष्ठिर न सुना सके और वह खोये हुए से चुपचाप बैठे रहे। उनके मुँह से उस दिन एक शब्द भी नहीं निकला।

गुरुदेव झुंझलाकर बोले – युधिष्ठिर, तू इतना मंदबुद्धि क्यों है ? क्या तुझे 24 घण्टे में ये दो वाक्य कण्ठस्थ नहीं हो सकते ?

युधिष्ठिर का गला भर आया। अत्यन्त दीनतापूर्वक वे बोले, गुरुदेव, मैं स्वयं अपनी इस मंदबुद्धि पर लज्जित हूँ। 24 घण्टे में तो क्या, जीवन के अन्त समय तक इन दोनों वाक्यों को कण्ठस्थ कर सका, जीवन में उतार सका तो अपने को भाग्यवान समझूँगा। कल का पाठ इतना सरल नहीं था। जिसे मैं इतनी शीघ्र याद कर लेता।

गुरुदेव तब समझे कि पाठ याद करना जितना सरल है, उसे जीवन में उतारना उतना ही जटिल है।

शिक्षा : आचरण के अभाव में ज्ञान तो खेत में खड़े उस ठूँठ की भाँति है, जो मनुष्य के होने का आभास मात्र देता है। ज्ञान शब्दों में नहीं आचरण से जाना जाता है।

- बालक के लिए माता-पिता व स्कूल आचरण के कारखाने हैं। विद्या पाकर परिस्थिति के अनुसार आचरण करने वाला बालक ही ज्ञानी बनता है।

–विनोबा भावे

99. ऐसा क्यों हुआ ?

भीष्म पितामह पूर्व भव में एक राजकुमार थे। वे धनुर्विद्या में कुशल थे। वे जंगल में क्रीड़ा करने के लिए गए। वहाँ उन्हें एक सर्प दिखा। सर्प को देखते ही उन्होंने अपनी विद्या का प्रयोग किया। उन्होंने उसके ऊपर एक बाण छोड़ा। बाण से सर्प तो मरा नहीं लेकिन घायल हो गया। उन्होंने घायल साँप को बाण से उठाकर एक कटीली झाड़ी में फेंक दिया। साँप उस झाड़ी में तड़फ-तड़फ कर मर गया। उसी का फल हुआ कि भीष्म पितामह जो इतने वीर थे, ब्रह्मचर्य जैसे कठोर व्रतों का आजीवन पालन करने वाले सुभट थे, फिर भी युद्ध क्षेत्र में बाणों की शय्या पर अर्थात् उनके शरीर का प्रत्येक अंग बाणों से बिधा हुआ था, सोना पड़ा।

धृतराष्ट्र पूर्व भव में एक राजा थे। उनमें राजा के योग्य सदाचार, न्यायशीलता, वीरता आदि सभी गुण थे, लेकिन उनमें जिह्वा लोलुपता का सबसे बड़ा अवगुण था। वे हमेशा अच्छे-अच्छे स्वादिष्ट भोजन करते थे। एक बार उसके रसोइया ने भोजन में एक हंस के बच्चे का माँस मिलाकर खिला दिया। राजा ने स्वाद में विशिष्टता आने के बाद भी कोई ध्यान नहीं दिया। सदाचार, सत्यवादिता आदि श्रेष्ठ गुणों के कारण वह पुनः राजा बने। जिह्वा की लोलुपता के वश भोजन की जानकारी नहीं लेने से अंधे हुए तथा हंस के सौ बच्चों का माँस खाने के कारण उनके 100 पुत्र उनके सामने ही मरण को प्राप्त हुए।

शिक्षा : एक जीव पर धनुर्विद्या के प्रयोग का फल कितना कष्टप्रद हुआ अतः मनोरंजन के लिए भी कभी किसी जीव को नहीं सताना चाहिए।

100. क्रोध का उत्तर क्षमा से

तीन दिन का भूखा भिखारी नगर सेठ की हवेली के द्वार पर गया। उसने भिक्षा के लिए पुकार लगायी। सेठानी ने भिखारी को देखा और कहा –"आगे जाओ यहाँ कुछ नहीं मिलेगा।" भिखारी ने दीन स्वर में कहा – "माताजी, तीन दिन का भूखा हूँ, कुछ तो दे दीजिए।" भिखारी को दुत्कारते हुए सेठानी ने कहा–"यहाँ से जाते हो कि नहीं, सुबह–सुबह दिन खराब करने के लिए आ गया।" भिखारी ने पुनः कहा माताजी, एक रोटी ही दे दो, बड़ी कृपा होगी। सेठानी तमतमा गयी। उसने भिखारी को रोटी देने की जगह पास पड़ा फर्श पोंछने का पोतना उठाया और उस भिखारी पर दे मारा।

भिखारी ने सहज भाव से उसे उठा लिया। भगवान् को धन्यवाद देते हुए उसने कहा – चलो कुछ तो मिला। साँझ ढलने पर वह भगवान् के मन्दिर में गया। उस पोतने की एक बाती बनायी और भगवान् के सामने जलाकर उसने भगवान् से प्रार्थना करते हुए कहा – "हे प्रभो! इस दीपक की तरह उस सेठानी के हृदय को भी प्रकाश से भर दे।"

- क्षमा का कवच पहन लो, निन्दक के तीर व्यर्थ हो जायेंगे।

  – तुलसीदास

- दण्ड देने की शक्ति होने पर भी दण्ड न देना सच्ची क्षमा है।

  – महात्मा गाँधी

101. सम्प्रेषण

एक बुढ़िया थी, जो सिर पर पोटली रखे धीरे-धीरे चली जा रही थी। बोझ के कारण वह थक चुकी थी, इतने में एक घुड़सवार निकला। बुढ़िया ने कहा - बेटा! मेरी यह पोटली घोड़े पर रख लो, अगले गाँव में इसे छोड़ देना। मैं धीरे-धीरे आ जाऊँगी। उस घुड़सवार ने बुढ़िया की बात सुनी और यह कहता हुआ आगे बढ़ गया कि जब बोझा ढोते नहीं बनता तो इतना लादकर क्यों चलती हो? आगे पहुँचने पर अचानक उसके मन में भाव आया कि बुढ़िया तो अकेली है, पोटली में माल जरूर रखा होगा। यहाँ कौन देख रहा है कि बुढ़िया ने मुझे पोटली दी है ? जब वह गाँव पहुँचेगी मैं कहीं का कहीं पहुँच जाऊँगा।

वह वापस आया और बड़े प्रेम से बुढ़िया से बोला - अम्मा जी! उस समय जब आपने कहा था - तब मेरा मन ठीक नहीं था, मैं थका हुआ था, समझ नहीं पाया था इसलिए तो मना कर दिया था, लाओ अब पोटली, मैं अगले गाँव छोड़ दूँगा।

अब तक बुढ़िया संभल चुकी थी वह बोली रहने दे बेटा! अब मैं ही ले जाऊँगी। घुड़सवार बोला - अरे अम्माजी! यहाँ पर अभी कोई नहीं आया, किसने आकर क्या कह दिया ? जो आप मना करने लगीं। बुढ़िया बोली - जिसने आकर तेरे से यह कह दिया कि - बुढ़िया अकेली है उसकी पोटली ले लो, उसी ने मुझसे भी कह दिया कि सावधान! इस अपरिचित व्यक्ति को अपनी पोटली मत देना।

102. हृदय में स्थान

एक धनाढ्य सेठ ने अपने दोनों बेटों को आधा-आधा धन देते हुए कहा-''बेटा तुम दोनों प्रत्येक गाँव, नगर और शहर में अपनी एक-एक कोठी (मकान) बना लेना, जिससे कभी कोई परेशानी नहीं हो।'' बड़े बेटे ने पिताजी के कहे अनुसार ही अनेक स्थानों पर अपने मकान बना लिए किन्तु छोटा बेटा बुद्धिमान था। उसने विचार किया - इस प्रकार मकान बनवा कर पैसा खर्च करने से कोई लाभ नहीं होगा। कुछ अच्छे कार्य करके धन का सदुपयोग करना चाहिए। अतः उसने आसपास के अनेक गाँव, नगर तथा शहरों में दुःखी गरीबों के दुःख दूर करने में तथा समाज सेवा में अपना धन देना आरम्भ कर दिया और उसने प्रत्येक व्यक्ति के दिल में अपना स्थान बना लिया। एक दिन दोनों भाइयों से पिताजी ने कहा चलो अपने-अपने मकान बताओ। तब बड़े भाई ने अनेक स्थानों के नाम गिनाए, जहाँ उसने अपने मकान बनाये थे। छोटे भाई ने कहा -''मैंने प्रत्येक गाँव, प्रत्येक घर तथा प्रत्येक व्यक्ति में अपना स्थान/मकान बनाने की कोशिश की है।'' बड़े भाई चिन्तित हुए, क्योंकि उसको ज्ञात था कि छोटे भाई ने किसी भी गाँव में अपना कोई मकान नहीं बनाया है? दोनों बस में बैठकर एक गाँव में पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही गाँव के बहुत से व्यक्ति छोटे भाई को देखकर ही दोनों से कहते -भाई साहब! आप दोनों का भोजन हमारे यहाँ होगा, आप दोनों मेरे यहाँ ही रुकें। कोई कहता मेरे यहाँ नाश्ता कर लेना, कोई कहता मेरे यहाँ दूध-पानी आदि लेना। तब बड़े भाई को समझ में आया कि वास्तव में उसने सब नगरों और सब घरों में नहीं बल्कि सबके हृदय में अपना स्थान बनाया है।

103. मधुर वचन

पाँचों पाण्डव द्रौपदी सहित वन में समय व्यतीत कर रहे थे अनेक आपत्तियों को सहन करते हुए भी परस्पर प्रेमपूर्वक सन्तोषमय जीवन व्यतीत कर रहे थे।

एक बार श्रीकृष्ण और उनकी पत्नी सत्यभामा उनसे मिलने गए। विदा होते समय सत्यभामा ने द्रौपदी से पूछा – बहिन! पाँचों पाण्डव तुम्हें सम्मान और आदर की दृष्टि से देखते हैं। तुम्हारी किसी भी प्रकार से अवहेलना नहीं करते हैं, वह कौन–सा मन्त्र है, जिसके प्रभाव से ये सब तुम्हारे वशीभूत हैं ?

द्रौपदी ने सहज भाव से उत्तर दिया – पति और कुटुम्बी–जन मधुर वचन तथा सेवा से प्रसन्न होते हैं, मन्त्रादि से वशीभूत करने के प्रयत्न में तो वे खिंचते हैं और पराए हो जाते हैं।

वाणी की मिठास, सत्य वचन, सत्य व्यवहार एवं शील गुणों से नारी सम्मान को प्राप्त होती है।

- जो ऐसी वाणी बोलता है कि सबके हृदय आनंदित कर दे, उसके पास दुःखों को बढ़ाने वाली दरिद्रता कभी न आयेगी।

  – कुरल काव्य

- कितना भी दुःखद विषय हो, उसकी चर्चा कठोर भाषा में नहीं करनी चाहिए।

  – महात्मा गाँधी

- मौन और एकान्त पवित्र आत्मा के सर्वोत्तम मित्र हैं।

  –विनोबा भावे

104. श्यालिनी ने क्यों खाया

एक पुरोहित के दो पुत्र थे, वायुमित्र एवं अग्निमित्र। दोनों पुरोहित के लाड़-प्यार के कारण पढ़-लिखकर विद्वान् नहीं बन पाये। समय पाकर पुरोहित ने जब जिनदीक्षा ले ली तब राजा ने पुरोहित पुत्रों में विद्वत्ता का अभाव होने के कारण पुरोहित का पद नहीं दिया। इसको दोनों भाई अपना अपमान समझकर पढ़ने के लिए अपने मामा के पास चले गए। वहाँ से पढ़कर लौटे और राजा से अपना पुरोहितपद प्राप्त किया। एक दिन नगर के बाहर मुनि संघ का आगमन हुआ। आगमन सुन बड़ा भाई अग्निभूति प्रसन्नता से संघ के दर्शन करने गया। संघ के दर्शन कर उसे वैराग्य हुआ। उसने मुनिराज के चरणों में दीक्षा धारण कर ली। दीक्षा की बात सुनकर अग्निमित्र की पत्नि को बहुत दुःख हुआ। उसने अपने देवर वायुमित्र से कहा -चलो अपन मुनिराज के पास चलकर तुम्हारे भैया को मना कर लाते हैं। वायुमित्र ने मना कर दिया। भाभी को पति वियोग का बहुत दुःख हो रहा था इसलिए वह बार-बार वायुमित्र को चलने के लिए कह रही थी। वायुमित्र साधुओं की निंदा करता हुआ किसी प्रकार जाने के लिए तैयार नहीं हुआ तो भाभी अपनी दीनता प्रकट करते हुए वायुमित्र के चरणों में गिर जाती है। वायुमित्र का दिल फिर भी नहीं पिघला उसने क्रोध के वशीभूत होकर भाभी को एक लात मार कर दूर ढकेल देता है। भाभी तत्काल संकल्प कर लेती है कि मैं तुम्हारे इन पैरों को जरूर खाऊँगी। तुमने मुझे लात मारी है। दोनों ही वहाँ से मरण कर संसार परिभ्रमण कर वायुमित्र का जीव श्रेष्ठी पुत्र सुकुमाल बनकर तपस्या करने के लिए साधु बन जाता है। भाभी का जीव श्यालिनी बन जाती है। जंगल में मुनि सुकुमालस्वामी को देखकर पैर याद आ जाता है, वह अपने बच्चों सहित मुनिराज के पैर खाना शुरू कर देती है।

105. पिंजरे का खुला द्वार

सौरीपुर के राजा समुद्रविजय एवं रानी शिवा के पुत्र का नाम नेमिकुमार था। बचपन से ही वह मेधावी, पराक्रमी एवं चिन्तनशील था। अत: युवावस्था में वह आत्म-चिन्तन करता हुआ संसार के सभी प्राणियों के सुख की बात सोचता रहता था।

परिवार के सदस्यों ने किसी प्रकार नेमिकुमार को विवाह के लिए राजी कर लिया। जूनागढ़ के राजा उग्रसेन की पुत्री राजीमती के साथ नेमिकुमार का विवाह सुनिश्चित हुआ। शुभ मुर्हूत में अनेक राजाओं एवं गणमान्य व्यक्तियों की बारात नेमिकुमार को दूल्हे के रूप में सजा कर राजीमती को ब्याहने के लिए चल पड़ी। उनके साथ चतुरंगिणी सेना तथा संगीत एवं वाद्य के कई कलाकार भी हँसते-गाते चल रहे थे।

यह बारात जब जूनागढ़ नगरी के समीप पहुँची तो विवाह-स्थल के समीप नेमिकुमार ने एक बाड़े में कैद सैकड़ों पशुओं एवं पिंजरों में बंद अनेक पक्षियों को भय से चीत्कार करते हुए देखा। उन्होंने अपने सारथी को रोककर पूछा – इन सब स्वच्छन्द विचरण करने वाले प्राणियों को बाड़ों और पिंजरों में क्यों बंद किया गया है ?

सारथी ने निवेदन किया – हे स्वामी! इन भोले और निरीह प्राणियों को आपके विवाह में कुछ लोगों को माँस-भक्षण कराने के लिए एकत्र किया गया है।

अपने सारथी से अनेक प्राणियों के विनाश से सम्बन्धित इस प्रकार के माँस-भक्षण सम्बन्धी कथन को सुनकर जीवों पर करुणा करने वाले दयालु नेमिकुमार ने मन में चिन्तन किया-''यदि मेरे

विवाह के कारण इन बहुत से प्राणियों का वध होता है तो यह जीव हिंसा का पापयुक्त कार्य किसी के लिए भी श्रेयस्कर नहीं है। मुझे इस कार्य में सहयोगी नहीं बनना चाहिए। ''ऐसा सोचकर नेमिकुमार ने सारथी को आदेश दिया कि ''इन पिंजरों के द्वार को खोल दो, बाड़े के फाटक अलग कर दो और इन निर्दोष प्राणियों को मुक्त कर दो। ''

सारथी ने अपने स्वामी की आज्ञा का पालन किया। नेमिनाथ मुक्त हुए उन प्राणियों को उछलते-कूदते वहाँ से जाते हुए देखते रहे। जब सब प्राणी वहाँ से चले गए तो नेमिकुमार ने संसार रूपी पिंजरे के खुले द्वार से अपनी आत्मा को मुक्त करने का भी निर्णय ले लिया।

उन्होंने अपने आभूषणादि उस मुक्ति-आन्दोलन में सहायक सारथी को प्रदान कर दिए एवं स्वयं संसार के सुखों से विरक्त होकर मन में दीक्षा का भाव लिए हुए विवाह-स्थल से वापस लौट पड़े।

शास्त्र कहते हैं कि - नेमिकुमार ने वहाँ से लौटकर रैवतक पर्वत पर जाकर साधक जीवन स्वीकार कर लिया। तपस्या और ध्यान की साधना द्वारा उन्होंने परम ज्ञान प्राप्त किया। अपने भावी पति नेमिकुमार के दीक्षा ले लेने पर राजीमती ने भी संसार त्याग दिया और वह तपस्वी पति की अनुगामिनी बन गयी। इन दोनों के त्याग से ऐसा कहते हैं कि बारात आदि भोजों में हमेशा के लिए इन्सानों ने माँस-भक्षण का त्याग कर दिया।

- हृदय में यदि सत्य अहिंसा के प्रति आस्था है तो समझना नेमिनाथ भगवान् से आज भी हमारा सम्बन्ध निश्चित है, इसमें कोई संदेह नहीं।

106. अहिंसा व्रत का प्रभाव

वाराणसी नगरी में राजा पाकशासन थे। सकल देश में महामारी फैली है, यह सुनकर कार्तिक शुक्ला अष्टमी के आठ दिन पर्यन्त सब जीवों की शान्ति के लिए यह घोषणा करायी कि कोई भी आठ दिन किसी जीव का वध नहीं करेगा। वहीं राजा के सेठ का पुत्र था, जो सप्त व्यसन में लिप्त रहता था, जिसका नाम धर्म था, वह राजा के उद्यान वन में चरते हुए मेंढ़ा को मारकर माँस खाकर हड्डियों को एक गड्ढा में रखकर मिट्टी से ढककर चला गया। वह मेंढ़ा जब नहीं दिखा तो राजा ने सर्वत्र अपने सिपाहियों को भेजा। रात्रि में उद्यान के माली ने अपनी स्त्री से मेंढ़े के मरण का वृत्तान्त कहा, जिसे गुप्तचर ने सुन लिया और राजा से कहा कि – सेठ के पुत्र धर्म को शूली पर चढ़ा दो, राजा ने यमदण्ड कोतपाल से कहा। यमदण्ड ने धर्म को शूली के स्थान पर ले जाकर यमपाल चाण्डाल से धर्म को मारने के लिए बुलाया। उधर यमपाल चाण्डाल ने सर्वौषधी मुनि के पास धर्म को सुनकर चतुर्दशी को किसी जीव का वध नहीं करूँगा, ऐसा व्रत ग्रहण कर लिया था। इसलिए उसने अपनी पत्नी से कहा कि – तुम सिपाहियों से कह दो, वे गाँव गए हैं और स्वयं घर के कोने में छिप गया।

यमपाल की स्त्री ने ऐसा ही कह दिया तो सिपाही ने कहा कि वह चोर बहुत सुवर्ण से युक्त था, पापी! आज ही चला गया, यमदण्ड के इस प्रकार कहने पर स्त्री ने हाथ के इशारे से उसके छिपने का स्थान बता दिया। यमदण्ड ने उसे बाहर निकाला, पर यमपाल ने कहा मैं आज नहीं मारूँगा। राजा के पास जाकर भी यमपाल ने कहा – प्रभो! मैं आज नहीं मारूँगा, मेरा संकल्प है कि चतुर्दशी को जीव का घात

नहीं करूँगा। जिससे राजा ने क्रोधित होकर कहा कि इन दोनों को मगरमच्छादि से भरे तालाब में फेंक दो। यमदण्ड ने दोनों को फेंक दिया। धर्म को मगरमच्छों ने खा लिया किन्तु यमपाल व्रत के माहात्म्य से जल देवताओं के द्वारा सिंहासन पर रख लिया गया और उसकी पूजा की।

सुंसुमार तालाब में फेंके गए चाण्डाल ने अल्पकाल तक ही अहिंसा व्रत का पालन किया था परन्तु वह इस व्रत के माहात्म्य से देवों के द्वारा पूजा गया।

107. मुनि निन्दा का फल

अयोध्या नगरी के राजा सुरत थे। उनकी पाँच सौ रानियाँ थीं। जिनकी पटरानी सती थी। वह राजा रानी में आसक्त रहता था। महामुनि के आगमन पर तुम महाराज के कार्य के लिए मुझे सूचित कर देना अन्यथा नहीं, इस प्रकार पहरेदार को कहकर राजा रनवास में प्रवेश कर गया। इधर दमधर और धर्मरुचि दो मुनि एक मास उपवास के बाद आहारचर्या के लिए प्रविष्ट हुए। सती के सजे हुए मुख पर राजा गोरोचन से तिलक कर रहे थे। तभी राजा को द्वारपाल ने आकर मुनि आगमन की सूचना दी। राजा ने सती से कहा कि – यह तिलक जब तक सूख नहीं पायेगा तब तक मैं मुनि की चर्या कराके आ पहुँचूंगा। तुम गुस्सा नहीं करना और चला गया। मुनि को बिठाकर उनकी चर्या कराके राजा शीघ्र ही आ गया, किन्तु मुनि निन्दा के फल से सती को उदुम्बर कुष्ठ रोग हो गया। उसके रुग्ण शरीर को देखकर सुरत मुनि हो गए और सती दीर्घ संसारी हो गयी।

108. अकृतपुण्य

भोगवती नगरी के राजा कामवृष्टि की रानी विष्टदाना के गर्भ में पापी बालक के आते ही राजा की मृत्यु हो गई और राजा के नौकर सुकृतपुण्य के हाथ में राज्य चला गया। माता ने बालक को पुण्य हीन समझकर उसका नाम 'अकृतपुण्य' रख दिया और परायी मजदूरी करके उसका पालन किया।

किसी समय बालक एक किसान के खेत पर काम करने के लिये चला गया। किसान ने उसे अपने भूतपूर्व स्वामी का पुत्र समझकर बहुत कुछ दीनारें दीं किन्तु उसके हाथ में आते ही अंगारे हो गई। तब उसको उसकी इच्छानुसार चने दे दिये वे भी लोहे के बन गये। माता ने इस घटना से देश छोड़ दिया और सीमवाक गाँव के बलभद्र नामक जैन श्रावक के यहाँ भोजन बनाने का काम करने लगी।

सेठ के बालक को खीर खाते देखकर वह अकृतपुण्य भी खीर मांगा करता था। तब एक दिन सेठ के लड़कों ने अकृतपुण्य को थप्पड़ों से मारा। सेठ ने उक्त घटना को जानकर बहन विष्टदाना को खीर बनाने के लिये चावल आदि सामान दे दिया। माता ने खीर बनाकर बालक से कहा बेटा, मैं पानी भरने जाती हूँ, इसी बीच में यदि कोई मुनिराज आवें तो उन्हें रोक लेना, मैं मुनिराज को आहार देकर तुझे खीर खिलाऊँगी।

भाग्य से सुव्रत मुनिराज उधर आ गये। बालक ने कहा– मुनिराज! आप रुको, मेरी माँ ने खीर बनाई है, आपको आहार देंगी। मुनिराज के न रुकने से बालक ने जाकर उनके पैर पकड़ लिये और बोला देखूँ अब कैसे जाओगे ?

उधर माता ने आकर पड़गाहन करके विधिवत् आहार दिया। बालक आहार देखकर बहुत प्रसन्न हो रहा था। मुनिराज अक्षीण ऋद्धिधारी थे। उस दिन खीर का भोजन समाप्त ही नहीं हुआ। तब विष्टदाना ने सपरिवार सेठ जी को, अनंतर सारे गांव को भोजन करा दिया। फिर भी खीर ज्यों की त्यों रही।

अगले दिन बालक वन में गाय चराने गया था। वहाँ उसने मुनि का उपदेश सुना। रात्रि में व्याघ्र ने उसे खा लिया। आहार देखने के प्रभाव से वह अकृतपुण्य मरकर स्वर्ग में देव हो गया।

पुनः उज्जयिनी नगरी के सेठ धनपाल की पत्नी प्रभावती के धन्य कुमार नाम का पुण्यशाली पुत्र हो गया। जन्म के बाद नाल गाड़ने को जमीन खोदते ही धन का घड़ा निकला। धन्यकुमार जहाँ-जहाँ हाथ लगाता वहाँ धन ही धन हो जाता था। आगे चलकर यह धन्यकुमार नवनिधि का स्वामी हो गया और असीम धन वैभव को भोगकर पुनः दीक्षा लेकर अंत में सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र पद पाया। यह है आहार दान का प्रभाव, जिससे महापापी अकृतपुण्य धन्यकुमार हो गया।

- आहार दान देने पर तीनों दान दिए होते हैं, क्योंकि प्राणियों की भूख और प्यास रूपी व्याधि प्रतिदिन होती है। आहार के बल से ही साधु हमेशा शास्त्र का अभ्यास करते हैं और आहार दान देने पर प्राणों की भी रक्षा होती है। आहार दान देने से विद्या, धर्म, तप, ज्ञान, मोक्ष सभी नियम से दिया हुआ समझना चाहिए।

109. सबसे मँहगा माँस

राजगृह नगर में राजा श्रेणिक राज्य करता था। उसके मंत्रियों में अभयकुमार मंत्री अधिक बुद्धिमान एवं दयालु था। एक बार उन मंत्रियों के बीच में यह विवाद छिड़ गया कि सबसे कीमती वस्तु क्या है? सभी मंत्रियों ने अपनी-अपनी बुद्धि से कई वस्तुओं के नाम लिए। कोई कपूर को कीमती, कोई केशर को। किसी ने स्वर्णभस्म को बहुमूल्य बतलाया तो किसी ने हीरे से जड़ाऊ आभूषण को किन्तु सबसे कीमती वस्तु का निर्णय नहीं हो सका।

तब राजा श्रेणिक ने अभयकुमार से पूछा। अभयकुमार उन मद्य-माँस के लोभी मंत्रियों को शिक्षा देना चाहता था। अतः उसने अपने मन में एक योजना निश्चित कर राजा को जवाब दिया कि सबसे महंगी वस्तु माँस है। यह सुनकर सभी मंत्री हँसने लगे, उन्होंने कहा- महाराज! ''यह बात विश्वास करने योग्य नहीं है,क्योंकि एक रुपये में टोकरे भर माँस बाजार में मिलता है।'' राजा को भी यह बात जंची अतः उसने अभयकुमार को कहा कि -तुम्हारी बात सत्य नहीं है।

यह सूचना सुनकर अभयकुमार ने निवेदन किया कि राजन्! ''मैं अपनी बात एक सप्ताह में सिद्ध करके बतला दूँगा। यदि मेरी बात सही हो तो राज्य दरबार के सभी लोगों को माँस खाना छोड़ना पड़ेगा।'' इस बात को असंभव मानते हुए राजा एवं उन मंत्रियों ने अभयकुमार की शर्त स्वीकार कर ली।

तब दूसरे दिन से अभयकुमार ने नगर में यह सूचना करवा दी कि राजा बहुत बीमार हो गए हैं। वैद्यों ने उनके इलाज के लिए एक तोला मनुष्य के कलेजे का माँस औषधि के साथ देने को कहा है।

नगरवासियों के पुण्य से हमें ऐसा राजा मिला। अतः उसके जीवन की रक्षा के लिए कोई भी नागरिक अपने कलेजे का एक तोला माँस प्रदान करे।

इस सूचना से सभी नागरिक हैरान हो गए, किन्तु कोई भी अपने कलेजे का माँस देने को तैयार नहीं हुआ। तब अभयकुमार ने क्रमशः एक करोड़ स्वर्ण मुद्राओं एवं सम्पूर्ण राज्य के बदले एक तोला माँस खरीदने के लिए उन सब मंत्रियों के घर अपने आदमी भेजे, किन्तु इसके लिए कोई तैयार नहीं हुआ क्योंकि सभी को अपना जीवन प्रिय था।

फिर एक सप्ताह बाद पुनः राजदरबार लगा। सभी मंत्री वहाँ राजा के स्वास्थ्य का समाचार पूछने के लिए एकत्रित हुए। तब अभयकुमार ने पुनः अपनी बात उनके सामने रखी, किन्तु सभी ने अपना सिर झुका लिया। तब अभयकुमार ने असली बात को प्रकट करते हुए कहा– ''राजा पूर्ण स्वस्थ हैं। यह सूचना तो मैंने अपनी उस दिन की बात को सिद्ध करने के लिए प्रसारित की थी। आप लोगों ने देख लिया कि माँस सबसे कीमती वस्तु है। हम केवल दूसरे के माँस को सस्ता समझते हैं और अपने छोटे स्वार्थ के लिए दूसरे प्राणी के कीमती जीवन को नष्ट कर देते हैं। जीवन अनमोल है, चाहे अपना हो या दूसरे का।''

अभयकुमार की इस उक्ति से सबकी आँखें खुल गयीं। शर्म की बात भूलकर लोगों ने स्वयं ही माँस–भक्षण का परित्याग कर दिया, क्योंकि एक क्षण की तृप्ति के लिए किसी भी प्राणी के कीमती जीवन को कौन बुद्धिमान व्यक्ति नष्ट करना चाहेगा ?

110. शंख का अभयदान

विजयवर्द्धन नगर में भुवनचन्द्र राजकुमार रहता था। श्रेष्ठिपुत्र शंख, पुरोहित-पुत्र अर्जुन एवं सेनापति पुत्र सोम उसके परम मित्र थे। एक बार किसी कापालिक ने उन्हें बतलाया कि विंध्यपर्वत की गुफा में प्रवेश करने पर तुम चारों पाताल कन्याओं के स्वामी बन सकते हो। उस कापालिक के वचनों के प्रलोभन में आकर चारों मित्र वहाँ पर गए, किन्तु पर्वत की गुफा में उन्हें एक यक्ष मिला। उस यक्ष ने वहाँ पर चार बकरे बाँध रखे थे।

उसने इन चारों मित्रों को कहा कि - जो गुफा के भीतर जा सकता है। राजपुत्र भुवनचन्द्र, अर्जुन एवं सोम अज्ञानवश बकरों की बलि देकर गुफा में चले गए और धूर्त कापालिक के द्वारा वहाँ पर मारे गए किन्तु श्रेष्ठिपुत्र शंख ने अपने तुच्छ लाभ के लिए बकरे की बलि देना उचित नहीं समझा और वह अपनी जीव-दया की भावना के कारण उस मौत के मुख से सुरक्षित वापस लौट आया।

रास्ते में एक गाँव में उसे सुमेध श्रावक मिला। मित्रों के वध से दुःखी शंख को उसने धैर्य बँधाया और कहा कि - तुमने एक बकरे की जान बचाकर पुण्य का कार्य किया है। मरते हुए जीवों को अभय प्रदान करना सबसे बड़ा धर्म है।

- मरणभय से भययुक्त सब जीवों को जो अभय दान है वही दान सब दानों में उत्तम है और वह दान सब आचरणों में प्रधान आचरण है।

111. दर्शन भ्रष्ट ही भ्रष्ट है

कांपिल्य नगर में राजा ब्रह्मरथ थे। उनकी रानी रामिल्या थी। उनका पुत्र अरिष्टनेमि तीर्थङ्कर के तीर्थ में ब्रह्मदत्त नामक बारहवाँ चक्रवर्ती हुआ। एक बार विजयसेन रसोइया ने भोजन करने के लिए बैठे हुए चक्रवर्ती को बहुत गर्म खीर परोसी। चक्रवर्ती खीर गर्म होने से खाने में असमर्थ हुआ तो उसी रसोइये पर उसे फेंककर मार दिया। वह मरकर लवण समुद्र में रत्नद्वीप में व्यन्तर देव हुआ। विभंग ज्ञान से वैर जानकर एक परिव्राजक साधु का रूप बनाकर मीठा केला आदि फल चक्रवर्ती को दिए। उन फलों को खाकर वह देव अन्त:पुर आदि से युक्त चक्री को समुद्र के बीच ले गया और मारने के लिए उपसर्ग किया। वह चक्री पञ्च नमस्कार मंत्र का स्मरण करता। जिससे उसे मारने में देव सक्षम नहीं हुआ। तब उस देव ने अपना असली रूप बनाया और विचार कर कहा ब्रह्मदत्त मैं तुमको मारता हूँ, किन्तु यदि जिनशासन नहीं है, ऐसा कहकर पञ्च नमस्कार को लिखकर पैरों से मिटा दो तो नहीं मारूँगा। चक्री ने ऐसा ही कर दिया तब देव ने उसे जल के बीच में मार दिया। चक्रवर्ती मरकर सातवें नरक गया। मन्त्री, पुरोहित और रानियाँ सम्यक्त्व के साथ पञ्च नमस्कार मंत्र का स्मरण करने से स्वर्ग में देव हुए।

जो पुरुष सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हुआ है, वह भ्रष्ट ही समझना चाहिए किन्तु चारित्र भ्रष्ट जीव भ्रष्ट जीव नहीं है।

- सम्यग्दर्शन के बिना मोक्षमार्ग में किया गया कार्य कुछ भी सुख नहीं दे सकता।

112. अभक्ष्य त्याग का फल

एक बार मेरी दादी बीमार हो गई। आयुर्वेदाचार्य राजवैद्य ने भरपूर औषधि की। औषधि का प्रयोग करते–करते सात–आठ दिन व्यतीत हो गए थे, लेकिन दादी का स्वास्थ्य ठीक होना तो दूर बीमारी दिन–प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही थी। आखिर वैद्यजी ने मुझे कह दिया कि अब तो तुम्हारी दादी का भगवान् ही रक्षक है। वो ही ठीक कर सकता है। यह सुनकर भी मैं उदास नहीं हुआ। मैंने भगवान् के सामने बैठकर सोचा भगवान् वास्तव में पाप के उदय से ही मेरी दादी बीमार हो गई हैं। मैं उन पापों को नष्ट करने के लिए एक प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज से मैं माँस–मछली नहीं खाऊँगा और अपने बाजार में भी माँस–मछली नहीं बिकने दूँगा।

मुझे विश्वास है कि अब मेरी दादी अवश्य ही ठीक हो जायेगी। सच में एक हफ्ते में ही मेरी दादी का स्वास्थ्य ठीक हो गया। मैंने इतिहास में पढ़ा था कि राणा सांगा पर विजय प्राप्त करने के लिए बाबर ने खुदा से प्रार्थना की कि मैं यदि राणा सांगा पर विजय प्राप्त कर लूँगा तो कभी शराब नहीं पीऊँगा। इस प्रतिज्ञा से उसके पूर्वोपार्जित पापों का क्षय हुआ उसने बाबर पर विजय प्राप्त कर ली।

वास्तव में अभक्ष्य पदार्थों का भक्षण करने से महान् पापों का आस्रव होता है, उनके फल में निश्चित रूप से दुःख मिलते हैं, इसलिए अभक्ष्य पदार्थों का त्याग करना चाहिए।

113. मछली को जीवनदान

अवन्ति देश में उज्जयिनी नगरी है। वहाँ पर मृगसेन धीवर रहता था। उसके यमराज की तरह भयंकर स्वभाव वाली एक पत्नी थी। वह धीवर मछली पकड़ कर एवं उन्हें बेचकर अपना भरण-पोषण करता था।

किसी समय उस नगर में यशोधर मुनि का आगमन हुआ। उनके प्रवचन में भीड़ देखकर उत्सुकता के कारण एक दिन वह मृगसेन धीवर भी मुनि की वन्दना के लिए गया। जब सब लोग चले गए तो उसने मुनि से विनती की कि हे महाराज! मुझे भी व्रत दीजिए। मैं उनका पालन करूँगा। मुनिराज ने कहा -व्रतों का पालन तुमसे नहीं होगा, क्योंकि उनमें सबसे पहले जीवदया का पालन करना पड़ता है। तुम मछली मारते हो। अतः तुम्हारे व्रत दूषित हो जायेंगे। दूषित व्रत उसी प्रकार अशुभ होते हैं। जैसे नाक-कटे व्यक्ति का मुख।

फिर भी उस धीवर ने आग्रह करके मुनिराज से इतना व्रत ले लिया कि मेरे जाल में सबसे पहले जो मछली फँसेगी, उसे मैं नहीं मारूँगा।

यह व्रत लेकर मृगसेन क्षिप्रा नदी के किनारे मछली मारने बैठ गया। उसने नदी में जाल फेंका। पहली बार में ही एक बड़ी मछली उसमें फँस गयी। अपने व्रत का पालन करने की दृष्टि से मृगसेन ने उस मछली को नदी में छोड़ दिया। फिर उसने दुबारा जाल फेंका। दूसरी बार भी वही मछली जाल में फँस गई। तब धीवर ने उस मछली में कुछ निशान बनाकर उसे फिर पानी में छोड़ दिया। संयोग से शाम तक वही मछली पाँच बार उस धीवर के जाल में फँसी और

पाँचों बार ही उसने मछली को जीवनदान देकर अपने व्रत का पालन किया।

अगले जन्म में वह मृगसेन धीवर गुणपाल सेठ के यहाँ पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ, जिसका लालन-पालन श्रीदत्त सेठ ने किया, किन्तु मुनि की भविष्यवाणी से यह जानकर कि गुणपाल का वह पुत्र नगरसेठ बनेगा, श्रीदत्त ने उसे मरवाने का पाँच बार प्रयत्न किया, किन्तु हर बार उसके प्राणों की रक्षा हो गई। अन्त में धीवर का वह जीव श्रेष्ठीपद एवं राज्यपद को भी प्राप्त करता है।

एक मछली को जीवनदान देने से मृगसेन धीवर को कितने ही जीवनदान मिले। जो व्यक्ति जीवदया का निरन्तर पालन करते हैं, उन्हें शाश्वत सुख मिलना सुनिश्चित है।

शास्त्रकार इसीलिए कहते हैं-जीव वध अपना ही वध है और जीव-दया अपनी ही आत्मा पर दया है। इसलिए विष के काँटे की तरह सब प्रकार की हिंसाएँ त्याग देने योग्य है।

यदि कभी सूर्य के बिना दिन हो सकता है, राजा के बिना राज्य हो सकता है, जलाशय के बिना कमल उत्पन्न हो सकता है, आधार के बिना चित्र रह सकता है, पुरुष और स्त्री के बिना कुल चल सकता है तथा पृथ्वी के बिना वृक्ष उत्पन्न हो सकता है। लेकिन जीवदया के बिना धर्म नहीं हो सकता है। जिस प्रकार जीव रहित शरीर शोभा नहीं पाता तथा नेत्ररहित मुखकमल शोभा नहीं पाता है, उसी प्रकार धर्माभिलाषी जनों के द्वारा दया के बिना किया जाने वाला धर्म कार्य शोभा नहीं पाता है। – धर्मरत्नाकर : आचार्य जयसेन

114. कर्ण की उदारता

एक बार श्री कृष्णजी पाण्डवों के साथ बातचीत कर रहे थे और कर्ण की उदारता की बार-बार प्रशंसा कर रहे थे, यह बात अर्जुन को अच्छी नहीं लगी। अर्जुन ने कहा – हमारे अग्रज धर्मराज जी से बढ़कर उदार तो कोई नहीं हो सकता फिर आप उनके सामने कर्ण की इतनी प्रशंसा क्यों करते हैं ?

श्री कृष्ण ने कहा- ''यह बात मैं तुम्हें फिर कभी समझा दूँगा।'' कुछ दिनों बाद अर्जुन को साथ लेकर श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के राजभवन में ब्राह्मण का भेष बनाकर पहुँचे। उन्होंने धर्मराज से कहा- हमको 40 किलो चन्दन की सूखी लकड़ी चाहिए। आप कृपा करके मँगा दें।

उस दिन मूसलाधार वर्षा हो रही थी। कहीं से भी लकड़ी मंगाने पर वह अवश्य भीग जाती। धर्मराज युधिष्ठिर ने नगर में अपने सेवक भेजे, किन्तु संयोग से कहीं भी चन्दन की सूखी लकड़ी एक किलो, दो किलो से अधिक नहीं मिली, युधिष्ठिरजी ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की- ''आज सूखी चन्दन की लकड़ी कहीं नहीं मिल रही है। आप कोई और वस्तु चाहो तो अभी दे सकता हूँ।''

श्रीकृष्ण ने कहा-''सूखा चन्दन नहीं मिलता तो नहीं सही हमें और कुछ नहीं चाहिए।''

वहाँ से अर्जुन को साथ ले ब्राह्मण के भेष में ही श्रीकृष्ण जी कर्ण के यहाँ पहुँचे। कर्ण ने बड़ी श्रद्धा से उनका स्वागत किया। (ब्राह्मण भेषधारी)श्रीकृष्ण ने कहा-हमें इसी समय एक मन सूखी लकड़ी चाहिए।

कर्ण ने दोनों ब्राह्मणों को आसन पर बैठाया और कहा–मैं अभी ला करके देता हूँ। फिर अपने घर के सुन्दर दरवाजे, पलंग तथा अन्य लकड़ी का सामान आदि तोड़ डाले और लकड़ियों का ढेर लगा दिया। सब लकड़ियाँ चन्दन की थीं। यह देखकर ब्राह्मण भेषधारी श्रीकृष्ण ने कहा – ''तुमने सूखी लकड़ियों के लिए इतनी मूल्यवान वस्तुएँ क्यों नष्ट कीं ?'' कर्ण हाथ जोड़कर बोला –''इस समय मूसलाधार वर्षा हो रही है। बाहर से लकड़ी मँगाने में देर होगी और लकड़ी भीग भी जाती। ये सब वस्तुएँ फिर बन जाएगी, किन्तु मेरे यहाँ आए अतिथि को निराश होना पड़े या कष्ट हो तो यह दुःख मेरे हृदय से कभी दूर नहीं होगा।''

श्रीकृष्ण ने कर्ण को यशस्वी होने का आशीर्वाद दिया और वहाँ से अर्जुन के साथ चले आए। फिर कृष्ण से कहा देखा, धर्मराज युधिष्ठिर के भवन के द्वार, चौखटें आदि भी चन्दन की लकड़ी के हैं। लेकिन चन्दन की लकड़ी माँगने पर भी उन वस्तुओं को नहीं दिया और कर्ण से चंदन की लकड़ी माँगने पर कर्ण ने अपने घर की मूल्यवान वस्तुएँ तोड़कर दे दीं। कर्ण स्वभाव से उदार हैं। इसी कारण मैं कर्ण की प्रशंसा करता हूँ। वास्तव में उदारतापूर्वक दिए गए दान से बढ़कर पुण्य कार्य और कोई नहीं।

शिक्षा : संसार में अनेक प्रकार के व्यक्ति होते हैं, कुछ ऐसे होते हैं, जिन्हें दुनिया अच्छा कहती है किन्तु वे वैसे नहीं होते हैं, कुछ ऐसे होते हैं, जिन्हें दुनिया अच्छा नहीं कहती है, वे वैसे ही होते हैं। युधिष्ठिरजी को जैसा उदार कहते थे, वे वस्तुतः वैसे उदार नहीं थे, किन्तु कर्ण को भी व्यक्ति उदार कहते थे, वे वैसे ही उदार थे।

115. प्रतिशोध कभी प्रतिशोध से समाप्त नहीं होता

काशी नरेश ब्रह्मदत्त के कौशल नरेश दीर्घेति पर आक्रमण किया। दीर्घेति पराजित होकर अपनी रानी के साथ जङ्गल में भाग आया और भूमिगत हो गया। उसने एक गरीब की झोपड़ी में शरण ली। गर्भवती रानी ने वहाँ बालक को जन्म दिया, जिसका नाम दीर्घायु रखा गया। ब्रह्मदत्त को यह ज्ञात था कि दीर्घेति अभी जीवित है और वह कभी भी आक्रमण कर सकता है, इसलिए उसने गुप्तचरों का जाल बिछा दिया और आदेश जारी कर दिया कि जहाँ कहीं भी दीर्घेति दिख जाए, वहीं उसका वध कर दो। दीर्घेति ने अपने पुत्र दीर्घायु को अपने से अलग कर दिया और उसे अन्यत्र भिजवा दिया। संयोग से ब्रह्मदत्त को दीर्घेति का पता चल गया और उसने दोनों पति-पत्नि का वध करवा दिया।

समय के साथ दीर्घायु युवा हुआ और उसे अपने अतीत का बोध हुआ। वह काशी नरेश ब्रह्मदत्त के यहाँ नौकरी पाने में सफल हो गया। उसने अपनी कला निपुणता के कारण राजा के अङ्गरक्षक का पद प्राप्त कर लिया। दीर्घायु को सदा इस बात का स्मरण रहता कि ब्रह्मदत्त उसके माता-पिता का हत्यारा है। एक दिन ब्रह्मदत्त अपने अङ्गरक्षक दीर्घायु और कुछ सैनिकों के साथ शिकार खेलने गया। सैनिक पीछे छूट गए और सम्राट् तथा अङ्गरक्षक काफी आगे निकल गए। जङ्गल में चलते-चलते बहुत थक गए और एक वृक्ष के नीचे सम्राट् ब्रह्मदत्त दीर्घायु की जाँघ पर सिर रखे विश्राम करने लगे तभी उसकी नींद लग गई।

दीर्घायु को लगा कि मेरे लिए इससे अच्छा मौका और क्या

होगा। उसने म्यान से तलवार निकाली और जैसे ही मारने को हुआ तो उसके माता-पिता एक वाक्य लिखकर म्यान में रख गए थे कि ''प्रतिशोध कभी प्रतिशोध से समाप्त नहीं होता। वह तो क्षमा, करुणा और प्रेम से होता है।'' यह पढ़कर उसने अपनी तलवार वापस म्यान में रख ली। सम्राट् ब्रह्मदत्त हड़बड़ाकर उठ बैठा। उसने दीर्घायु से कहा- मैंने एक सपना देखा है कि मैं दीर्घेति के पुत्र की गोद में सिर रखकर सो रहा हूँ और वह मुझ पर प्रहार करता है। बताओ तुम कौन हो ? दीर्घायु ने सम्राट् से कहा- राजन् मैं ही दीर्घेति का पुत्र हूँ। राजा थरथर काँपने लगा।

राजा ब्रह्मदत्त दीर्घायु के चरणों में गिर पड़ा और उसने अपने लिए जीवनदान की याचना करने लगा। दीर्घायु ने कहा - उठिए राजन्! मैं तो स्वयं आपसे अभयदान माँगता हूँ। अगर आपको मैं मारना चाहता तो अब तक मार चुका होता। परन्तु मुझे अपने माता-पिता का वह वाक्य जो मेरे लिए लिखकर रख गए थे कि ''प्रतिशोध कभी प्रतिशोध से समाप्त नहीं होता। वह तो क्षमा, करुणा और प्रेम से होता है।'' जिससे मैंने आपको क्षमा किया, आप भी मुझे क्षमा करें, मैं आपसे अभयदान चाहता हूँ। इतिहास कहता है कि राजा ब्रह्मदत्त ने दीर्घायु को क्षमा कर उसका राज्य वापस करते हुए अपनी कन्या का विवाह भी उससे कर दिया।

शिक्षा : प्रेम से बढ़कर पुण्य नहीं, प्रतिशोध से बढ़कर पाप नहीं। प्रेम से बढ़कर अमृत नहीं, प्रतिशोध से बढ़कर जहर नहीं।

116. कुलभूषण-देशभूषण

इनकी शिक्षा प्राप्त करने की उम्र हो चुकी है ऐसा विचार कर माता-पिता ने दोनों बालक देशभूषण और कुलभूषण को गुरुकुल में भेज दिया। दोनों बालकों ने मन लगाकर गुरु से नीतिवाक्य, अस्त्र-शस्त्र चालन एवं अन्य विषयों पर शिक्षा प्राप्त की तथा शिक्षा पूर्ण होने पर वापस घर जाने का निवेदन किया। गुरु से आशीर्वाद ले घर सूचना पहुँचा दी गई कि अमुक दिन हम आयेंगे।

सारे नगर को दुल्हन की भाँति सजाया गया। अपने-अपने घरों के समक्ष महिलायें आरती लेकर खड़ी थीं। आखिर क्यों न हो बहुत दिनों बाद भावी राजा अर्थात् राजकुमार नगर में पधार रहे हैं। इधर रथ जैसे ही मुख्य द्वार से प्रवेश किया कि दोनों भाइयों की नजर सामने की छत पर खड़ी एक अत्यन्त सुन्दर कन्या पर पड़ी। जिसे देखते ही दोनों क्षण मात्र में मोहित हो गए और उस कन्या से मैं ही विवाह करुँगा, ऐसा सोचने लगे। उधर आगे बढ़ता हुआ रथ जैसे ही महल के द्वार पर पहुँचा तो उन्होंने देखा कि वही कन्या उनके माता-पिता के साथ हाथ में आरती लेकर खड़ी है। रथ से उतरते ही माँ ने उस कन्या का परिचय देते हुए कहा - बेटा! ये तुम्हारी बहिन है जिसका जन्म तुम्हारे गुरुकुल जाने के पश्चात् हुआ। बहुत दिनों से इसकी आँखें अपने युगल भाइयों को देखने के लिए तरस रहीं थीं। आज तृप्त हुईं।

यह बात सुनते ही दोनों को आत्मग्लानि होने लगी। वे सोचने लगे धिक्कार है, इस विषयवासना को जिसे योग्य-अयोग्य का विचार नहीं रहता। हमारी सगी बहिन के विषय में हमने ऐसा

विचार किया। तत्क्षण उन्हें संसार, शरीर, भोगों से वैराग्य उत्पन्न हुआ और उन्होंने वन में जाकर मुनि दीक्षा अंगीकार की एवं घोर तप करते हुए कुंथलगिरि सिद्धक्षेत्र से मुक्ति लाभ प्राप्त किया।

117. इसे कहते हैं दान

तीर्थराज श्री सम्मेदशिखरजी में किसी समय पञ्चकल्याणक महोत्सव के समय कलश चढ़ाने की बोली हुई। कलश की बोली बढ़ती जा रही थी। 51 हजार रुपये की बोली एक प्रसिद्ध उद्योगपति की थी। जनता की धारणा थी कि इतनी ऊँची बोली और न जा सकेगी। तीन कहने से पहले एक ओर से 55 हजार रुपये आवाज आई। लोगों का ध्यान उस ओर गया। एक साधारण गृहस्थ ने बोली बढ़ाई। अब उद्योगपति और उस साधारण गृहस्थ में होड़-सी मच गई। धीरे-धीरे बोली एक लाख रुपये तक पहुँच गई, किन्तु दोनों एक-दूसरे से बढ़ते चले जाते थे। अन्त में बोली 1 लाख 11 हजार रुपये में प्रसिद्ध उद्योगपति की रही। उद्योगपति ने बड़े स्नेह व सौजन्य से उस व्यक्ति से भी भेंट करना चाहा, जिसने 1 लाख 10 हजार रुपये तक बोली बोली थी। दोनों उदारमना स्नेह से एक-दूसरे के गले मिले। उस गृहस्थ ने उद्योगपति की धर्म भक्ति की बड़ी सराहना की और कहा कि - वे ही कलश चढ़ाने के लिए उपयुक्त पात्र हैं। साथ ही उसने कहा कि मैंने 1 लाख 10 हजार रुपये तक बोली बोली थी तो शायद किसी को भ्रम हो कि मैंने केवल बोली बढ़ाने की इच्छा से बोला हो तो मैं स्पष्ट कर दूँ कि जितने रुपये बोले थे, मैंने वे रुपये देने के लिए ही बोले थे। अतः ये रुपये मैं दान में देता हूँ। मेरी दृष्टि में वह रुपया निर्माल्य की कोटि में आता है। अतः मेरी बोली का 1 लाख 10

हजार रुपये का चैक मैं तीर्थराज सम्मेदशिखरजी के ऑफिस में जमा करा रहा हूँ।

इस चकाचौंध करने वाली घोषणा से जनता में अभूतपूर्व आनन्द छा गया। उद्योगपति फिर उनके गले मिले और गद्गद् वाणी में बोले कि मेरी बोली में व्यापार हुआ और उनकी बोली में शुद्ध दान। अतः इनका पलड़ा भारी है और मेरा हल्का। हारकर भी इनकी ही जीत है। आज इन्होंने हमें निर्माल्य द्रव्य की नई परिभाषा दी है।

प्रबन्धकों ने उस दानी श्रावक का अभिनन्दन करना चाहा किन्तु उसने स्वीकार नहीं किया। कहा कि - उसका दान फिर व्यापार हो जाएगा। निर्माल्य द्रव्य से वह अभिनन्दन भी नहीं चाहता है। निर्माल्य द्रव्य निर्माल्य है। सभी जनता के मुख से धन्य-धन्य अनायास ही निकल गया।

शिक्षा : दान में धन देने के संकल्प मात्र से दान का धन श्रावक के लिए निर्माल्य हो जाता है। अतः दान किए गए धन तथा दान की बोली के धन को तत्काल मन्दिरजी में दे देना चाहिए।

- दानादि करने से पाप घटता है, पुण्य बंधता रहता है एवं मोह भी कम होता जाता है।
- जो दान देते समय लेखा-जोखा नहीं रखता, उसके यहाँ धन की कभी भी कमी नहीं आती।
- धर्मामृत की प्राप्ति हो ऐसी भावना से दान देना चाहिए, धन प्राप्ति के लिए नहीं।

- आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज (परमार्थ देशना)

118. औषधि दान की महिमा

श्रीकृष्णजी ने एक दिगम्बर मुनिराज के दर्शन किए। वे मुनिराज अत्यन्त दुर्बल और कृशकाय थे। श्रीकृष्णजी ने कहा– महाराज आप अस्वस्थ हैं क्या ? महाराज ने कुछ भी नहीं कहा, क्योंकि वे बीमारी को सहन करने वाले थे। श्रीकृष्णजी ने राजवैद्य से चर्चा की कि – एक मुनि महाराज बीमार हैं। वे अपना रोग बताते नहीं हैं। आपको दूर से ही देखकर रोग ज्ञात करना है एवं प्रासुक शुद्ध औषधि देना है, जिसे मैं आहार के साथ दे दूँगा किन्तु दिगम्बर मुनिराज 24 घण्टे में एक ही बार आहार ग्रहण करते हैं। अतः उसी में औषधि देना है, अलग से नहीं।

वैद्यजी ने दिगम्बर मुनिराज को दूर से ही देखकर रोग को जान लिया और औषधि तैयार कर श्रीकृष्णजी को दे दी। श्रीकृष्णजी ने नवधा भक्ति से मुनिराज का पड़गाहन किया और औषधि किसी भी प्रकार से महाराज को आहार में दे दी। औषधिदान के प्रभाव से श्रीकृष्णजी को तीर्थङ्कर प्रकृति का बंध हुआ।

धीरे-धीरे मुनिराज का रोग ठीक हो गया तो एक दिन श्रीकृष्ण जी वैद्य को मुनिराज के पास गए और नमोऽस्तु करके मुनिराज से कहा–आपका रोग इन्हीं वैद्यजी की औषधि से ठीक हुआ है। महाराज जी ने कुछ भी नहीं कहा तो वैद्यराजजी का क्रोध सातवें आसमान पर पहुँच गया, क्योंकि वैद्य ने ही औषधि तैयार की और प्रशंसा का एक शब्द भी महाराज ने नहीं कहा। कैसे महाराज हैं, उपकार करने वाले की भी प्रशंसा नहीं करते। मन ही मन महाराज की निन्दा करने लगा। मुनि-निन्दा से उस वैद्य ने तिर्यञ्चायु का बंध कर लिया और मरण

करके बन्दर की पर्याय में पहुँच गए।

कालान्तर में वही मुनिराज एक वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ बैठे थे। वैद्यराज का जीव बन्दर वहाँ वृक्ष के ऊपर बैठा था। मुनिराज को देखते ही उसे पूर्व भव का जातिस्मरण (ज्ञान) हो गया कि ये वही मुनिराज हैं, जिनका मैंने (वैद्य ने) रोग दूर किया था, फिर भी इन्होंने कोई प्रशंसा नहीं की थी। आज अच्छा मौका है, इनसे बदला लेना चाहिए। वृक्ष से नुकीली टहनी तोड़ी और मुनिराज की जाँघ में घुसेड़ दी, खून के फब्बारे निकलने लगे, मुनिराज की जाँघ में घाव बन गया, किन्तु महाराज ने कोई भी प्रतिक्रिया नहीं की तब उसे समझ में आया कि ये तो समता के धारी हैं, प्रशंसा करो या निन्दा करो। उपकार करो या अपकार करो ये कुछ भी नहीं कहते हैं।

अब उसे पश्चाताप हुआ, मुझे यह नहीं करना था। पूर्व जन्म का वैद्य तो था ही वहीं जङ्गल के वृक्षों के पत्तों आदि का रस एवं जड़ी-बूटी उस घाव में भर दीं। कालान्तर में घाव ठीक हो गया।

घाव में दवा लगाने के बाद पहुँच गया मुनिराज के पास, चरणों में बैठ गया। अपने किए हुए कार्य का पश्चाताप करने लगा और मुनिराज से धर्मोपदेश देने के लिए प्रार्थना करने लगा।

दिगम्बर मुनि समता के धारी तो होते ही हैं, करुणा उमड़ी, कल्याणकारी उपदेश दिया और पाँच अणुव्रतों को ग्रहण किया। अब तो बन्दर का जीवन ही बदल गया। आयु समाप्ति से सात दिन पूर्व सल्लेखना धारण की और समाधिपूर्वक मरण किया और सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ।

119. चार अवसर

एक सेवक ने राजा से निवेदन किया कि राजन्! आपने कहा था कि तू मेरी बहुत सेवा करता है, मैं तुझे इनाम दूँगा। लगभग एक वर्ष हो गया है, जब भी मैं माँगता हूँ, आप मुझे टाल देते हैं। इस समय धन की बहुत कमी है। कृपया आप इनाम दे दें तो मेरी घर की गाड़ी अच्छी तरह से चलती रहे।

राजा ने कहा – ''चिन्ता मत कर, कल सुबह सात बजे आ जाना। मैं तेरे लिए रत्नों का कोठा खुलवा दूँगा। जितने चाहे रत्न ले जाना।'' सेवक घर वापस आया। सारी रात उसे निद्रा न आई। प्रातः होते ही पहुँच गया। राजा ने रत्नों का कोठा खुलवा दिया, कहा ''जितने चाहो रत्न ले जाओ, परन्तु तीन घंटे बाद तुम्हें एक रत्न भी लेने न दिया जाएगा, कोठे से बाहर कर दिया जाएगा।''

सेवक कोठे के अंदर पहुँचा। रत्नों से कोठा भरा था, देखकर प्रसन्न हो गया। इधर-उधर देखा तो तरह-तरह के एक से बढ़कर एक सुन्दर मनभावन खिलौने दिखाई दिए। कभी किसी में चाबी भरकर चलाता, कभी कम्प्यूटर गेम खेलता, कभी टी.व्ही. देखता, कभी मोबाइल लगाता, बड़ा प्रसन्न हो रहा था कि तीन घण्टे व्यतीत हो गए। द्वारपाल आया और उसे कोठे से बाहर निकाल दिया। हाय! मैं एक रत्न भी नहीं ले पाया। रोता-धोता पहुँच गया राजा के पास। उसके रोने से राजा को दया आई, उन्होंने द्वारपाल को बुलाया और दूसरा कोठा खोल देने के लिए कहा।

इस कोठे में भरा था सोना ही सोना किन्तु वही शर्त कि तीन घण्टे बाद तुम्हें कोठे से बाहर कर दिया जाएगा।

सेवक कोठे में गया, चारों तरफ सोना ही सोना भरा था। लेना चाह ही रहा था कि एक बहुत सुन्दर स्त्री ने उसका स्वागत किया। आगे जाकर देख, अनेक युवतियाँ दिखाई दीं, कोई नृत्य कर रही थी, कोई मधुर गाना गा रही थी, कोई संगीत के साथ गाना गा रही थी। मस्त हो गया उनमें, बस एक टक देखता ही रहा उनकी ओर। समय का पता ही नहीं चला और तीन घण्टे बाद घंटी बजी, द्वारपाल आया उसको बाहर निकाल दिया। खाली हाथ, पश्चाताप के अलावा कर ही क्या सकता था बेचारा ? फिर पहुँचा राजा के पास, गिड़गिड़ाया, विनय की, एक अवसर और दिया जाए तो पूरे जीवन आपके गुण गाऊँगा। राजा का दिल पसीज गया। तीसरा कोठा भी खोलने की आज्ञा कर दी राजा साहब ने।

सेवक तीसरे कोठे में गया जो चाँदी से भरा था, सिल्लियों से। समय इस बार भी तीन घण्टे का ही मिला। सोचा था, इस बार अधिक से अधिक माल लेकर आऊँगा। अन्दर प्रवेश करते ही देखा बच्चों के द्वारा माचिस की तीलियों का एक बहुत छोटा सा घर बना हुआ रखा था। सेवक ने उसमें हाथ लगाया तो सारी तीलियाँ यहाँ-वहाँ खिसक गई। द्वारपाल ने कहा पहले इसे ठीक करो, फिर आगे बढ़ना। ज्यों-ज्यों उसे ठीक करना चाहा पर वह उलझता ही गया और तीन घण्टे समाप्त हो गए। इस बार भी खाली हाथों को मलता हुआ पश्चाताप करता हुआ, निकलना पड़ा कोठे से।

पुनः पहुँच गया राजा के पास बस राजा एक अन्तिम मौका और दे दो। फिर आपको कभी भी अपनी सूरत नहीं दिखाऊँगा। अच्छा तुम कहते हो तो एक बार और सही किन्तु समझ लेना

आखिरी मौका दे रहा हूँ।

चौथा कोठा भी खुलवाया गया, पीतल से भरा था। चलो इसी में सन्तोष कर लूँगा, खूब भरकर ले जाऊँगा किन्तु अन्दर प्रवेश करते ही अनेक प्रकार के व्यञ्जनों की सुगन्ध से गला तर हो गया। देखा 56 प्रकार के व्यञ्जन रखे थे। भूखा तो था ही, खाने को बैठ गया खूब खाया ठूंस-ठूंस कर खाया ठण्डा पानी पिया। सामने देख सुन्दर मुलायम गद्दा पलंग के ऊपर बिछा था। विचार किया थोड़ी देर विश्राम कर लूँ। भोजन किया हो और सामने अच्छा बिस्तर हो और ए.सी. का कमरा हो, फिर निद्रा को बुलाना नहीं पड़ता वह स्वयं आ जाती है। उसे भी निद्रा आ गई। तीन घण्टे पूर्ण होने पर उसे कोठे से बाहर निकाल दिया।

अब इस कहानी को गृहस्थ जीवन में घटित करिए। मनुष्य जन्म मिला था - आत्म-कल्याण करने के लिए, परन्तु बचपन चला गया खेलने-कूदने, ऊधम करने में। जवानी चली गई पत्नी के साथ। बच्चे हो गए तो उनके विवाह की चिन्ता, दुकान की चिन्ता, मकान की चिन्ता में तथा बुढ़ापे में जठराग्नि कमजोर हो जाती किन्तु खाने की तीव्र इच्छा होती है। भोजन के बारे में कहा जाता है रुचता नहीं है अर्थात् अच्छा नहीं लगता, पचता नहीं और और सामने आता है तो बचत नहीं है और जब मरण की घण्टी बजती है तो खाली हाथ, बिना कुछ कल्याण किए, यूँ ही चला जाता है।

शिक्षा : इस मानव जीवन में कुछ समय निकाल कर कुछ आत्म कल्याण की साधना कर लो, अन्यथा पूरा जीवन इसी प्रकार समाप्त हो जाएगा।

120. बुढ़िया की लुटिया

दसवीं शताब्दी की घटना है, दक्षिण में गङ्ग नरेश की भावना पूर्ति के लिए भगवान् बाहुबली की प्रतिमा का निर्माण कराया। चूँकि चामुण्डराय का अपर नाम गोम्मट था। इसी कारण गोम्मट के ईश्वर होने से बाहुबली की प्रतिमा गोम्मटेश्वर के नाम से प्रसिद्ध है। यह एक ऐसी प्रतिमा है जिसके दर्शन कर स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरु ने विश्व का आठवाँ आश्चर्य बताया।

वास्तव में यह प्रतिमा जो 57 फीट ऊँची, एक शिला में निर्मित है, अति आकर्षक, कारीगरी का अनुपम उदाहरण है। जो देखे वह देखता ही रहे, दृष्टि हटाने को मन ही न करे, ऐसी है वह विशाल प्रतिमा। हाल ही में इस प्रतिमा को वर्ल्ड हेरीटेज का सम्मान दिया गया है।

प्रतिमा पूर्ण होने के बाद आगम विधि अनुसार उसकी प्राण-प्रतिष्ठा हुई और तैयारी होने लगी प्रथम महामस्तकाभिषेक की। स्वाभाविक था कि प्रथम महामस्तकाभिषेक कौन करे चामुण्डराय जी, क्योंकि उन्होंने ही निर्माण कराया था।

अभिषेक करने वालों की लम्बी कतार लगी हुई थी और नीचे अपार जन समूह खड़ा है। लम्बी कतार में प्रथम क्रम चामुण्डराय जी का था। वह रत्न कलश हाथ में लिए हुए हैं, जिसमें शुद्ध प्रासुक जल भरा हुआ था। चामुण्डरायजी ने एक नहीं अनेक कलशों का जल प्रतिमा पर डाला किन्तु जल नाभि से नीचे ही नहीं आया। चामुण्डरायजी सहित अनेक व्यक्तियों ने कलशों से जल छोड़ा किन्तु जल तो नाभि से नीचे नहीं आया सब चिन्तित हो रहे थे। प्रतिष्ठाचार्य

जी भी खेद-खिन्न होकर सोचने लगे कि जरूर कहीं प्रतिष्ठा करने में भूल हुई है।

उसी समय एक वृद्ध महिला अपने छोटे से बेटे को लेकर आई, जिसके हाथ में गुल्लिका थी। उसने प्रतिष्ठाचार्य आदि से कहा मेरे बेटे को भी अभिषेक कर लेने दो। लोगों ने कहा - बूढ़ी माँ पागल तो नहीं हो गई, जब इतने बड़े-बड़े कलशों से अभिषेक करने पर भी नाभि से नीचे जल नहीं आ रहा पूर्ण अभिषेक नहीं हो पा रहा तो तेरे इस गुल्लिका के जल से क्या पूर्ण अभिषेक हो सकता है ? बुढ़िया बहुत गिड़गिड़ाई फिर भी उसे बाहर निकाल दिया और कलशों से अभिषेक करने लगे, फिर नाभि से नीचे जल नहीं आया तो सभी श्रावक-श्राविका चिन्तित हो गए, हारकर सभी ने कहा - बुढ़िया को बुलाया जाए और उसके बेटे से अभिषेक करा लिया जाए शायद उसी की भक्ति काम कर जाए।

चामुण्डरायजी की आज्ञा हुई वृद्ध महिला को बुलाया गया और उसके बेटे को अभिषेक करने का अवसर दिया गया। वृद्ध महिला ने अपने बेटे से कहा - ले बेटा यह गुल्लिका लुटिया पहले प्रभु चरणों में झुककर नमस्कार कर, भक्ति में बहुत शक्ति है, प्रभु मुझ गरीब की लाज अवश्य रखेंगे।

बेटा तो फूला नहीं समाया। इतने बड़े-बड़े लोगों के बीच मुझे भी मौका मिल रहा है। वह अपने भाग्य को सराहने लगा।

लुटिया लेकर मंच पर चढ़ा। दोनों हाथों से लुटिया को पकड़ा और प्रभु का स्मरण करते हुए प्रभु के मस्तक पर लुटिया का जल छोड़ दिया।

श्रावकों ने देखा तो देखते ही रह गए, जल की धारा भगवान् बाहुबली की प्रतिमाजी के चरणों तक आ गई। भगवान् बाहुबली की जय जय गोम्मटेश के नारों से आकाश गूँज उठा। सभी ने वृद्ध महिला का सम्मान करना चाहा किन्तु वह वृद्ध महिला बाद में मिली ही नहीं और वह बेटा भी नहीं मिला। सभी ने कहा ''बुढ़िया की लुटिया गजब कर गई।''

सभी के मन में यह प्रश्न तो उठा ही होगा कि बड़े-बड़े कलशों के जल की धारा नीचे तक क्यों नहीं आई ? यही कारण होगा कि चामुण्डरायजी को यह अहंकार आया होगा कि मैंने तो 57 फीट ऊँची प्रतिमा बनवाकर प्रतिष्ठा कराई, किन्तु इस जनता ने तो 57 सेंटीमीटर की भी प्रतिमा नहीं बनवायी क्योंकि अहंकार वही है, जहाँ दूसरों को नीचा दिखाकर स्वयं को ऊँचा उठाया जाता है।

शिक्षा : भक्ति में शक्ति है। थोड़ा-सा अहंकार भी भक्ति के प्रभाव को नष्ट कर देता है।

- भगवान् की भक्ति में बिना कामना के भाव लगाने से शुद्ध कंचन बन जाते हैं, यही भक्ति का सार है।
- आप भगवान् की भक्ति से कुछ संसार की वस्तुएँ माँगना चाहते हो, पर ध्यान रखना भगवान् की भक्ति के फल का कोई अंत नहीं होता।
- ध्यान रखना धार्मिक अनुष्ठान कभी भी हेय बुद्धि से नहीं किये जाते क्योंकि इनके माध्यम से ही मोक्षमार्ग प्रशस्त होता है।

– आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज (परमार्थ देशना)

121. राजा-प्रजा का सम्बन्ध

आज से लगभग 2200 वर्ष पूर्व सिकन्दर ने यूनान से आकर भारत पर आक्रमण किया था तब पौरुष राजा से उसका युद्ध हुआ था। यद्यपि विजय तो सिकन्दर को मिली फिर भी पौरुष की वीरता को देखकर सिकन्दर को बड़ी प्रसन्नता हुई। दोनों परस्पर बैठकर बातें कर ही रहे थे कि इसी बीच दो व्यक्ति वहाँ आए और कहते हैं आप दोनों क्यों बैठे हैं ? कृपया हमारा झगड़ा सुलझा दीजिए। उन्होंने झगड़े का कारण पूछा, तब पहला व्यक्ति बोला - हमने इनसे मकान खरीदा था, उसकी खुदाई की तो उसमें स्वर्ण निकला। हमने तो मात्र मकान लिया था स्वर्ण नहीं, अतः यह स्वर्ण इनका है, किन्तु यह कहता है कि - हमने मकान बेचा तो उसमें जो माल निकला वह भी इनका ही हुआ। यह सुनकर सिकन्दर पौरुष से बोला इनका न्याय तो आप ही करें। यह प्रजा आपकी, राज्य भी आपका ही है, मैंने सिर्फ आपको दो हाथ दिखाये हैं।

पौरुष ने कहा - आप लोगों के कोई सन्तान है तो एक कहता इनका बेटा है और मेरी बेटी है। पौरुष बोला ठीक है दोनों का विवाह कर दो और सब स्वर्ण भेंट में दे दो। यह न्याय सुनकर वह दोनों खुश होकर चले गए।

सिकन्दर कहता है - आपने यह क्या किया, यह माल तो राजा का था। पौरुष कहता वह अभी भी राजा का है। बल्कि प्रजा के पास जो धन है, वह भी राजा का है। राजा उससे जब चाहे तब ले सकती है। सिकन्दर कहता मुझे विश्वास नहीं है कि वह स्वर्ण वापस

दे दे। पौरुष ने ढिंढोरा पिटवा दिया कि राजा को स्वर्ण की आवश्यकता है जिसके पास जितना स्वर्ण हो वह अपने नाम की चिट लगाकर रख जाए। सबेरा होते ही पर्वत के समान स्वर्ण का ढेर लग गया। प्रजा की उदारता देखकर सिकन्दर अचम्भे में पड़ गया। सिकन्दर कहता धन्यवाद आपको तथा आपकी प्रजा को। सिकन्दर कहता मैंने ऐसे उदार और प्रजावत्सल्य राजा को कष्ट दिया इसका मुझे पश्चाताप है।

बाद में पौरुष राजा ने प्रजा से कह दिया कि स्वर्ण की अभी जरूरत नहीं है, सब अपना-अपना स्वर्ण वापस ले जाए तो सारी प्रजा जिनने स्वर्ण दिया सब अपना-अपना स्वर्ण वापस ले गए।

शिक्षा : जहाँ की प्रजा, राजा को सब कुछ मानती है और राजा, प्रजा को सब कुछ मानता है, वहाँ कोई दूसरा आक्रमण नहीं कर सकता है।

- जो राजा प्रीति के साथ दान देता है और प्रेम के साथ शासन करता है; उसका यश सारे जगत् में फैल जाता है।
- जो राजा उदार, दयालु तथा न्याय निष्ठ है और जो अपनी प्रजा की प्रेमपूर्वक सेवा करता है; वह राजाओं के मध्य में ज्योति स्वरूप है।
- धन्य है वह राजा, जो निष्पक्ष होकर न्याय करता है और अपनी प्रजा की रक्षा करता है; वह मनुष्यों में देवता समझा जायेगा।

– कुरल काव्य

122. संसार वृक्ष

एक व्यापारी पानी के जहाज में माल भरकर व्यापार के लिए चला उसे विश्वास था कि मैं नगर सेठ बन जाऊँगा। लेकिन मार्ग में ही तूफान आने से जहाज डूब गया। व्यापारी जहाज से उछलकर तैरता हुआ किनारे आ जाता है और एक रास्ते की ओर चल देता है। कुछ दूर जाकर देखता है एक काला हाथी चिंघाड़ता हुआ उसकी ओर भागा आ रहा है। वह घबरा गया और कहने लगा प्रभु तेरे बिना मेरा कौन रक्षक है ? इस हाथी से बचा तभी आकाशवाणी हुई। हे जीव! तुमने आज प्रभु को याद किया है। तेरी रक्षा अवश्य होगी। उसे सामने एक वृक्ष दिखा और उछलकर उस पर लटक गया। हाथी भी उसके पीछे-पीछे आकर वृक्ष को अपनी सूंड से पकड़कर जोर-जोर से हिलाने लगा पथिक घबरा गया। उसने देखा नीचे की ओर एक समुद्र के समान विशाल कुँआ था। उसके चारों ओर चार काले नाग और बीच में एक अजगर मुँह फाड़े देख रहा था कि पथिक गिरे और हम डसें। पथिक और घबरा गया। उसने ऊपर की ओर देखा कि उसी डाल को जिसे वह पकड़ा था, दो चूहे काट रहे थे - एक सफेद और दूसरा काला। उसे और चिन्ता हुई हाथी ने जोर से वृक्ष को हिलाया तभी एक बूँद शहद मुँह में आकर गिरी और मधुमक्खियों ने अपने ज्ञान से जानकर कि इस व्यापारी ने वृक्ष को हिलाया है, उसके सारे शरीर से लिपट गईं, तब वह चिल्ला कर प्रभु-प्रभु याद करने लगा। उसी समय देव विमान लेकर आते हैं और पथिक से कहते हैं कि - यहाँ आ जाओ लेकिन इसी बीच पथिक के मुख में एक बूँद शहद की आकर गिरती है, वह पथिक उस शहद की

मिठास में इतना खो गया कि मधुमक्खियों का दुःख अजगर का भय भूल गया। देव उसे फिर आवाज लगाते हैं कि – हे पथिक! डाल को छोड़कर शीघ्र ही विमान में आ जाओ, लेकिन पथिक कह रहा है कि शहद की एक बूँद और ले लूँ। एक बूँद और आ जाने पर देव उससे कहते हैं – अब तो चलो वरना डाली कटने वाली है और डाली के कटते ही अजगर तुम्हें डस लेगा, ऐसा कह देव ने उसका हाथ पकड़ लिया। तब पथिक कहता है, मुझे नहीं जाना है। ऐसा कह पथिक झटके से अपना हाथ छुड़ा लेता है। पथिक सोच रहा है कि मधु में कितना मिठास है और कितना आनन्द आ रहा है। वह ऐसा विचार ही कर रहा था कि हाथी जोर से वृक्ष को हिलाता है, चूहे डाल काट चुके थे। इसलिए डाल से गिरकर पथिक अजगर के मुँह में जा गिरा।

यहाँ पर समुद्र को संसार माना है। उसमें भटकते-भटकते किनारे पर लगना मनुष्य पर्याय का मिलना। हाथी काल का प्रतीक, वृक्ष पर चढ़ना धर्म धारण करना। मधुमक्खी चिपकना बच्चों का चिपकना, मधु की मिठास भोगों का आनन्द, सफेद और काला चूहा दिन और रात का प्रतीक, देव का आना अर्थात् गुरु का उपदेश, चार सर्प चारों गतियों के प्रतीक, अजगर निगोद के समान है। चूँकि वह भोगों में लगकर सब कुछ भूल जाता है। अतः इन भोगों को छोड़ो वरना संसार में दुःख ही दुःख उठाना पड़ेगा।

शिक्षा : संसारी जीव दुःख आने पर प्रभु को याद करता है प्रभु उसे उपदेश देते हैं किन्तु वह भोगों के कारण प्रभु के उपदेश पर ध्यान नहीं देता इसलिए संसार में घूमता रहता है।

123. महामन्त्र णमोकार का प्रभाव

आचार्य देशभूषणजी महाराज एक शहर से गुजर रहे थे। एक मुस्लिम भाई का एक ही बेटा था। उस बेटे को साँप ने काट लिया था। सारे शहर के तन्त्रवादी, मन्त्रवादी थे, वह सारे इलाज कर चुके थे। लेकिन उसका जहर नहीं उतार पाए। अचानक आचार्य श्री देशभूषणजी महाराज उस रास्ते से गुजर रहे थे। मुस्लिम भाई ने उनके पैर पकड़ लिए और कहने लगा, आप तो पहुँचे हुए फकीर हैं, आपके पास जरूर कोई मंत्र सिद्धि होगी कृपया मेरे बेटे का जहर उतार दीजिए, मेरा यह इकलौता बेटा है, मैं आपका जन्म भर उपकार मानूँगा। आचार्य श्री देशभूषणजी महाराज श्रेष्ठ साधक थे। उनके पास सिद्धियाँ थीं। उन्होंने तुरन्त अपने कमण्डलु से जल लेकर मंत्रित किया और उसके ऊपर छींटा तो वह बेटा ठीक हो गया। वह मुस्लिम भाई इतना प्रभावित हुआ कि महाराजश्री का चातुर्मास जहाँ कहीं भी होता था वह वहाँ जरूर जाता था। उस मुस्लिम ने महाराज से पूछा कि - वह कौन-सा मंत्र था, जिससे कि आपने उस सर्प का विष समाप्त कर दिया। अत्यन्त श्रद्धा में गुरु मुख से निकला हुआ वाक्य आपके लिए मन्त्र का काम कर देता है। आपकी श्रद्धा होनी चाहिए, क्योंकि समीचीन श्रद्धा से भरा हुआ मन ही मन्त्र कहलाता है। देशभूषणजी महाराज ने बताया णमोकार मन्त्र। जिसको तू पढ़कर फेर देगा या पानी डाल देगा वह ठीक हो जाएगा।

थोड़े दिन उसने पढ़ा उसको सिद्धि हो गई। एक बार एक जैनी भाई का बेटा बीमार हो गया, उसका सभी जगह इलाज करा लिया लेकिन वह ठीक नहीं हुआ। किसी ने बताया वह मुस्लिम भाई

झाड़ते हैं। वह उनके पास गया उनने झाड़ा और बच्चा ठीक हो गया।

वे जैन भाई बोले कि आपने तो इसको बहुत जल्दी ठीक कर दिया। अब आप हमको यह बता दो कि आपने इसको कौन से मंत्र से झाड़ा था ? बताना तो नहीं चाहता था (क्योंकि नीतिकारों ने अपने अनुभव से यह नुक्से बनाये हैं कि सिद्ध किया हुआ मन्त्र किसी को बताना नहीं चाहिए)। अकस्मात् उसने बता दिया कि मैंने णमोकार मन्त्र से झाड़ा। वह जैनी कहता णमोकार मन्त्र, इसको तो हमारे घर में बच्चा-बच्चा पढ़ता है। "अति परिचय से होत है बहुत अनादर भाय और मलियागिर की भीलनी चन्दन देत जलाय।" अति परिचय से अनादर होता है। जैसे मलयागिर के जङ्गल में रहने वाली भीलनी भी चंदन की कीमत को नहीं जानती हैं। वह उसको जला करके रोती है।

शिक्षा : सच्ची आस्था के साथ इस महामन्त्र का जाप, पाठ व ध्यान करना चाहिए।

- णमोकार मंत्र का ध्यान करने से क्लेश, दुःख, भय, दरिद्रता, रोग आदि उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जिस प्रकार अग्नि की एक चिंगारी से बारूद के बड़े-बड़े ढेर नष्ट हो जाते हैं। इतना ही नहीं अपितु एकाग्रचित्त से किया गया इसका ध्यान निर्वाण सुख की प्राप्ति का परम साधन है।
- घर में मन्त्राराधना करने से एक गुणा, वन में सौ गुणा, बगीचे तथा सघन वन में हजार गुणा, पर्वत पर दस हजार गुणा, नदी पर लाख गुणा और जिनेन्द्र देव के समक्ष अनन्त गुणा फल मिलता है। अतः कार्यसिद्धि के लिए मन्त्राराधना देवालय या जिनेन्द्र देव के समक्ष करना ही श्रेष्ठ है।

124. वीरसेनाचार्य की धर्मवीरता

यह घटना सन् 1478 की है। जब जैनों पर काफी अत्याचार हो रहे थे। कोल्हुओं से पेलकर तेल के गरम कड़ाहों में उबालकर, जीवित जलाकर और दीवारों में चिनकर उन्हें स्वर्गधाम पहुँचाया गया था। जो किसी प्रकार बच रहे, वे जैसे-तैसे जीवन व्यतीत कर रहे थे।

दक्षिण भारत के अर्काट जिले का वेंकटामयेट्टई राजा था। उसका जन्म कबरई नाम की हल्की जाति (जहाँ माँसाहार का सेवन होता था।) में हुआ था। उच्चकुलोत्पन्न कन्या से विवाह करके उच्च वंशी बनने की लालसा उसके मन में थी। उसने एक दिन समस्त जैनों को बुलाकर अपनी अभिलाषा प्रकट की कि वे अपने समाज की किसी सुन्दरी से हमारा विवाह कर दें।

राजा के मुख से उक्त प्रस्ताव का सुनना था कि जैन वज्राहत से रह गए। फिर भी वंशज तो नर केहरियों के थे। वन का सिंह अपनी जवानी तेज और शौर्य खो देने पर भी मूँछ का बाल क्यों उखाड़ने देगा। वह दलदल में फँसे हाथी के समान तो अपमान सहन न कर सकेगा। भले ही जैन अपना पूर्व वैभव तथा बल विक्रम सब गँवा बैठे थे। परन्तु जैनधर्म द्वेषी, आचरणहीन कुलोत्पन्न राजा को अपनी कन्या क्यों दे ? यह कैसे हो सकता था ? यह उस कन्या और कन्या के पिता का ही नहीं, किन्तु समूचे जैन संघ का अपमान करने का साहस राजा को कैसे हुआ ? यही क्या कम अपमान है ? इस धृष्टता का उत्तर देना ही चाहिए, पर विचित्र ढंग से यही सोचकर जैनों से कन्या का विवाह कर देने की स्वीकृति दे दी।

नियत समय व स्थान पर राजा की बारात पहुँची किन्तु वहाँ स्वागत करने वाला कोई न था। विवाह की चहल-पहल तो दूर रही, वहाँ किसी मनुष्य का शब्द तक सुनाई नहीं दे रहा था। घबराकर मकान का द्वार खोलकर जो देखा गया तो वहाँ एक कुतिया बँधी हुई मिली, जिसके गले में बँधे हुए कागज पर लिखा था कि राजन्! आपसे विवाह करने को कोई जैन बाला तैयार नहीं हुई अतः हम सब क्षमा चाहते हैं। आप इस कुतिया से विवाह कर लीजिए और जैन कन्या की आशा छोड़ दीजिए। सिंहनी कभी शृगाल को वरण करती हुई न सुनी होगी।

वाक्य क्या थे, तीर थे। आदेश हुआ राज्य भर के जैनों को नष्ट कर दिया जाए। जो जैनधर्म परित्याग करें, उन्हें छोड़कर बाकी सबको परलोक भेज दिया जाए। राजाज्ञा थी फौरन लागू की गई। जो जैनत्व को खोकर जीना नहीं चाहते थे, वे हँसते-हँसते मिट गए। कुछ बाह्य में जैनधर्म का परिधान फेंककर छद्मवेशी बन गए और कुछ सचमुच जैनधर्म को छोड़ बैठे।

जैनधर्म के मुख्य चिह्न जिनबिम्बदर्शन, रात्रिभोजन त्याग, छना हुआ जल पीना, ये सब राज्य द्वारा अपराध घोषित कर दिए गए। परिणाम इसका यह हुआ कि धीरे-धीरे जनता जैनधर्म को भूलने लगी और अन्य धर्म के आश्रय में जाने लगी।

इन्हीं दिनों सौभाग्य से एक गृहस्थ टिण्डीवनम् के निकट बेलूर में एक तालाब के किनारे छिपे हुए जल छानकर पी रहा था। राजा के सिपाहियों ने उसे देखा और जैन समझकर बन्दी बना लिया। राजा को पुत्र रत्न की प्राप्ति की खुशी में उसे प्राण दण्ड न देकर

भविष्य में ऐसा न करने की चेतावनी देकर ही छोड़ दिया गया।

सिंह की गोली खाने पर जो स्थिति होती है, वही उक्त गृहस्थ की हुई। वे चुटीले सर्प की तरह क्रुद्ध हो उठा और कहने लगा "ऐसा बचने से तो मर जाना ही श्रेष्ठ था।" क्या हम छद्मवेशी बन रहें, क्या इसी तरह धर्म का अपमान सहते हुए जीवित रहेंगे। इन्हीं विचारों में निमग्न होकर मारे-मारे फिरने लगे। वापस घर न आए और श्रवणबेलगोला जाकर जिनदीक्षा को धारण करके दिगम्बर मुनि हो गए, उन्होंने जैनधर्म का विशेष अध्ययन कर पुनः सारे दक्षिण भारत में जीवन ज्योति जगा दी। सौ जैन रोजाना बनाकर आहार लेने की प्रतिज्ञा ली। जो जैन छद्मवेशी बने हुए थे, वे प्रत्यक्ष रूप से वीरप्रभु के झंडे के नीचे संगठित हुए और जो जैन नहीं थे, वे जैनधर्म में दीक्षित हो गए। साथ ही बहुत से जो जैनधर्म को अनादर की दृष्टि से देखते थे, वे भी जैनधर्म में आस्था रखने लगे और जैनी बनने को बड़ा समझने लगे। जिस दक्षिण भारत में जैनधर्म प्रायः लुप्त हो चुका था, उसी दक्षिण भारत में फिर से घर-घर में णमोकारमन्त्र की ध्वनि गूँजने लगी। वे महाराज श्री वीरसेनाचार्य थे। जिनका समाधिमरण बेलूर में हुआ था।

शिक्षा : धर्म का अपमान सहन करने से तो मर जाना अच्छा है।

- धर्म और किसी वस्तु का नाम नहीं है बल्कि अपने कर्त्तव्य का नाम धर्म है।

– आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज

(परमार्थ देशना)

125. प्राण से बढ़कर हैं हमारे ग्रन्थ

सम्राट् हर्ष के समय (600-650 ई.) एक चीनी यात्री ह्वेनसांग भारत देश की यात्रा पर आया था। जब वे अपने देश वापस जाने लगे तब तक उन्होंने अपने साथ अनेक ग्रन्थों का संग्रह कर लिया था और जिसको वे अपने साथ चीन ले जाना चाह रहा था। उन्होंने सम्राट् हर्ष से भेंट करके ग्रन्थों को अपने देश ले जाने के लिए अनुमति माँगी तो सम्राट् हर्ष ने प्रसन्न होकर अनुमति दे दी और उसे चीन तक सकुशल पहुँचाने के लिए एक विशाल नौका भी प्रदान की और सुरक्षा के लिए 20 युवा तैराक सैनिकों को साथ कर दिया।

उन तैराक सैनिकों को आदेश था कि समुद्र में आने वाली प्राकृतिक आपदाओं से अतिथि एवं ग्रन्थों की प्राण पण से रक्षा की जाए। चीनी यात्री अपनी विदाई पर चकित था, नौका चली उसमें कुल 30 व्यक्ति सवार थे तथा ग्रन्थों का भण्डार था। यात्रा के चौथे दिन अचानक तूफान के लक्षण दिखने लगे, हवा के प्रचंड थपेड़ों से नाव डगमगाने लगी, विषम परिस्थितियाँ देखकर नाव के प्रधान ने कहा-''नाव की रक्षा के लिए उसका भार हल्का किया जाए। सर्वप्रथम ग्रन्थों को पश्चात् व्यक्तियों की रक्षा के लिए सभी तैयार हो जाएँ।'' अगले ही क्षण युवा सैनिकों ने ग्रन्थों को अपने-अपने मस्तिष्क पर बाँधे और समुद्र में छलांग लगा दी। युवा तैराक सैनिक तब तक समुद्र में तैरते रहे जब तक कि वह समुद्री तूफान शान्त नहीं हो गया। ह्वेनसांग यह देखकर अवाक् रह गया जब समुद्री तूफान शान्त हो गया सभी युवा तैराक सैनिक नाव पर वापस आ गए तब ह्वेनसांग ने उस तैराकों के प्रधान से पूछा कि आपने निर्जीव पोथियों की रक्षा के

लिए अपने सजीव युवाओं के प्राण संकट में क्यों डाले ? नौका प्रधान ने उत्तर दिया– महोदय, हम भारतीयों के लिए ग्रन्थ निर्जीव पोथी पन्ने नहीं है अपितु हमारे प्राण हैं, इनसे हमारी संस्कृति जीवित है, इनकी रक्षा के लिए हमारे प्राण भी चले जाएँ तो भी कम है। मनुष्य की मृत्यु निश्चित है पर धर्म ग्रन्थ तो अमर हैं।

शिक्षा : ग्रन्थों के माध्यम से ही किसी भी देश, धर्म की संस्कृति सुरक्षित रहती है। अतः प्राणों से पहले इनकी रक्षा करनी चाहिए।

126. प्रेरक प्रसंग

विनोबा भावे सत्याग्रह आन्दोलन के दौरान तेरह माह जेल में रहे। वहाँ उनकी दैनिक आवश्यकताओं की पूति के लिए उन्हें कुछ वस्तुएँ दी गईं थीं। जेल की अवधि पूर्ण होने पर जब वे अपने आश्रम वर्धा वापस आए तो अपने उपयोग में आने वाली आवश्यक सामग्री रखकर शेष सब अलग कर दीं। आश्रम के लोगों ने कहा कि– बाबाजी! यह तो आपका आश्रम है, यहाँ तो आप जो चाहें सब अपने पास रख सकते हैं। तब विनोबा ने कहा कि – जेल में रहकर मुझे ज्ञात हो गया कि जीवनयापन के लिए अल्प–सामग्री भी पर्याप्त है। अपनी आवश्यकता से ज्यादा सामग्री रखना ठीक नहीं है और अपनी जरुरतें निरन्तर बढ़ाते जाना भी ठीक नहीं है। यह तो लोलुपता कहलाएगी। यही बात तो अनादिकाल से जैनधर्म में कही है कि अपनी आवश्यकता से ज्यादा सामग्री का संग्रह करना परिग्रह कहलाता है और यह परिग्रह पाप का कारण होता है।

127. भाग्य बड़ा या पुरुषार्थ

एक राज्य का मन्त्री वृद्ध हो गया था, अतः राजा को नए मन्त्री की तलाश थी। राजा चाहता था कि नया मन्त्री पूर्व के मन्त्री के समान बुद्धिमान, दक्ष और पारंगत हो। राजा ने घोषणा कराई कि जो भी इस पद का दावेदार हो उसे छोटी-सी परीक्षा देनी होगी। तीन नाम मन्त्री पद हेतु आए। राजा ने तीनों से कहा कि - आपको अलग-अलग कमरों में बन्द किया जाएगा, आपको उनसे बाहर निकलना है। पहला व्यक्ति कमरे में शान्ति से सो जाता है, वह सोचता है जब राजा ने बाहर से बन्द करवाया है तो उसे कौन खोल सकता है। दूसरा व्यक्ति कमरे में बैठा चिन्तन करता रहा कि क्या करें, कैसे करें। उसने कोई प्रयास नहीं किया। तीसरे व्यक्ति ने सोचा कोई न कोई रास्ता जरूर होगा। मुझे प्रयास करना चाहिए। उसने उठकर दरवाजा खींचा तो वह आसानी से खुल गया, क्योंकि दरवाजा बाहर से बन्द नहीं किया गया था। तीसरे व्यक्ति को उसके पुरुषार्थ एवं लगन के कारण मंत्री पद दे दिया गया।

शिक्षा : भाग्य के भरोसे बैठे रहने से कुछ नहीं होता जो पुरुषार्थ करते हैं, उनका साथ भाग्य भी देता है। इसलिए कहा जाता है भाग्य पुरुषार्थ का अनुसरण करता है।

- भाग्य को वही कोसते हैं, जो कर्महीन हैं।

  - पं. जवाहरलाल नेहरु

- भाग्य पर वह भरोसा करता है, जिसमें पौरुष नहीं होता।

  - प्रेमचन्द, कायाकल्प

128. उदारता की जीत

प्रजा, कवियों एवं चारणों से राजा कौशल की प्रशंसा सुन ईर्ष्या के वश हो काशी नरेश ने अचानक आक्रमण करके राजा कौशल को हरा दिया। राजा कौशल भागकर जंगल में चला गया। काशी नरेश कौशल का राजा बना लेकिन प्रजा उससे संतुष्ट नहीं हुई। तब काशी नरेश ने सोचा, जब तक कौशल राजा जीवित है, प्रजा मुझसे संतुष्ट नहीं हो सकती, अतः उसने घोषणा कर दी कि जो कोई कौशलराज को जिन्दा या मरा मेरे सामने लायेगा उसे सौ स्वर्ण मुद्राएँ पुरस्कार रूप में दी जायेगी।

यह सूचना राजा कौशल ने भी जंगल में किसी के मुख से सुन ली। एक दिन एक पथिक ने वनवासी राजा कौशल से कौशल देश का मार्ग पूछा। राजा ने उससे पूछा तुम कौशल क्यों जाना चाहते हो ? पथिक अपनी आँखें पोंछते हुए बोला–"भाई! मैं बड़ा कष्ट में हूँ। मेरा करोड़ों की सम्पत्ति से भरा जहाज समुद्र में डूब गया है, मैं एक दरिद्र से भी बड़ा दरिद्र हो गया हूँ। मैंने कौशल राजा की उदारता, वात्सल्य और प्रेम के बारे में बहुत सुना है। मुझे विश्वास है कि वे मेरी कुछ न कुछ सहायता अवश्य करेंगे।"

राजा कुछ सोचकर बोला– "तुम किसी बात की चिन्ता नहीं करो, मैं तुम्हें अवश्य ही कौशल देश पहुँचा दूँगा।" और उसको साथ लेकर काशी दरबार में पहुँचा और बोला– "महाराज! आपने कौशलराज को पकड़कर लाने वाले को सौ स्वर्ण मुद्राएँ देने की घोषणा की है। मैं वही कौशलराज हूँ, आप मेरा सिर ले लीजिए एवं

मेरे साथी को सौ स्वर्ण मुद्राएँ दे दीजिए।'' यह सुन काशी-नरेश को समझ में आया कि कौशलराज के प्रजा इतना क्यों चाहती है ?

सच में, यह राजा अपने प्राण देकर प्रजा के दुःख को दूर करने की क्षमता रखता है और राजा को ऐसा ही होना चाहिए। उसने गद्‌गद्‌ होकर कौशलराज को अपने हृदय से लगा लिया ओर राजसिंहासन पर बिठाते हुए बोला-''मैं आपको क्या मारूँ, मैं अपनी उस दुष्ट आशा एवं ईर्ष्या को मारूँगा, जिसने ऐसे उदार-दयालु राजा के साथ मुझसे ऐसा व्यवहार करवाया।'' ऐसा कहते हुए उसने कौशलराज की अधीनता स्वीकार कर ली।

शिक्षा : कौशलराज की उदारता से उसे खोया हुआ राज्य भी सहज रूप से वापस मिल गया इसलिए कितनी भी आपत्ति में हो, उदारता नहीं छोड़नी चाहिए।

- आप दूसरों के दुःखों में सहानुभूति रखेंगे तो कल जब आपको उसकी आवश्यकता होगी, तब वे ही लोग आपको अपना सहयोग दिल की गहराइयों से देंगे।

– अज्ञात

- अपने साथ उपकार करने वालों के साथ जो साधुता बरतता है, उसकी तारीफ नहीं है। महात्मा तो वह है, जो अपने साथ बुराई करने वालों के साथ भी भलाई करे।

– महात्मा गाँधी

129. त्याग की महिमा

खदिरसार नाम का एक भील जंगलों में रहता था। एक बार शिकार हेतु वह और उसकी पत्नी दोनों जंगल में विचरण कर रहे थे कि अचानक सामने हिलती हुई झाड़ियाँ दिखाई दीं। हिलती झाड़ी देखकर भील ने सोचा झाड़ी के पीछे कोई पशु होगा। अतः उसे मारने हेतु उसने तीर कमान पर रख निशाना साध लिया। जैसे ही वह तीर चलाने के लिए तैयार हुआ कि उसकी पत्नि ने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा – हे स्वामिन्! तीर मत चला देना अन्यथा बड़ा अनर्थ हो जायेगा, वह कोई पशु नहीं अपितु कोई वन देवता हैं। यह बात सुनते ही भील ने तीरकमान नीचे कर लिया तथा सामने आते हुए वन देव को देखकर अचम्भे में पड़ गया।

दोनों ने उन देवता को हाथ जोड़कर नमस्कार किया तथा वे उनके चरणों में बैठ गये। मुनिराज ने उन दोनों को आशीर्वाद दिया। गद्गद् होकर भील युगल ने मुनिराज से निवेदन किया–हे प्रभु! हमारे कल्याण के लिए कोई मार्ग बतायें। तब मुनिराज ने पूछा–हे भव्य पुरुष! तुम इस जंगल में अपना जीवनयापन कैसे करते हो ? तब वह भील बोला–हे प्रभु! जंगल में रहने वाले पशुओं को मारकर उसके माँस को खाकर हम अपना जीवनयापन करते हैं।

मुनिराज बोले–अरे! प्राणियों का वध करके माँस खाना तो महापाप माना गया है। तुम्हें इसका त्याग करना चाहिए। तब भील बोला–हे प्रभु! यह जंगल है यहाँ अन्नादि पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलता। यदि हम माँस खाना छोड़ देगें तो संभवतः हमें भूखे ही मरना पड़ेगा

अतः कोई दूसरा उपाय बताइये।

मुनिराज ने भील की इन बातों को सुनकर विचार किया, ये आत्मकल्याण के इच्छुक तो हैं कुछ उपदेश इन्हें अवश्य देना चाहिए। अतः पूछा–क्या तुम कौए के मांस का त्याग कर सकते हो ? तब दोनों पति पत्नि ने कहा–हाँ हमने अभी तक कभी कौए का माँस नहीं खाया और आगे भी नहीं खायेंगे, ऐसा आपके समक्ष संकल्प करते हैं। मुनिराज ने आशीर्वाद दिया और वे अपने पथ पर निकल गये।

बहुत काल व्यतीत होने पर एक दिन भील के पेट में असहनीय पीड़ा होने लगी। तब वैद्य को बुलाया और औषध मांगी तब वैद्य ने कहा – इस रोग के इलाज की एक मात्र औषधि है जिसे कौए के माँस के साथ खाना पड़ेगा। जैसे ही भील ने यह बात सुनी उसने अपने संकल्प की बात वैद्य के समक्ष रखी, लेकिन वैद्य ने अन्य कोई उपाय न बताकर उसे नियम तोड़ लेने की सलाह दी। तब भील ने कहा–भले ही मेरे प्राण चले जायें किन्तु देवता के समक्ष लिए नियम को मैं तोड़ नहीं सकता। अतः उसने दवाई सेवन नहीं की।

कर्म योग से कुछ ही दिनों में उसकी मृत्यु हो गई और वह मरकर सौधर्म स्वर्ग में देव हो गया। तथा आगे चलकर वही जीव राजा श्रेणिक बना। जो भविष्यकाल में तीर्थंकर बनेंगे।

एक छोटे से त्याग से जो महान् पुण्य संचय हुआ उसके समक्ष माँस भक्षण से संचित पाप भी फीका पड़ गया। अतः हमें निरंतर पाप त्याग के अभ्यास में लगे रहना चाहिए एवं लिए गए नियमों का दृढ़ता पूर्वक पालन करना चाहिए।